मान मन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका - वर्ष ०९, अंक ०४

'चैत्र-वैसाख' वि.सं. २०८२ (अप्रैल २०२५ ई.) श्रीकृष्ण सं. ५२५१

'मानमन्दिर कला अकादमी' द्वारा रंगीली होली के पावन पर्व पर 'भक्त-प्रह्लाद' नाटिका की प्रस्तुति की गई

मूल्य १०/-

‘मानमन्दिर कला अकादमी’ द्वारा रंगीली होली के पावन पर्व पर ‘भक्त-प्रह्लाद’ नाटिका की प्रस्तुति की गई

अनुक्रमणिका

विषय- सूची		पृष्ठ- संख्या
१	श्रीबलदेवप्रसादशुक्लजी का प्रतिभाशाली प्रभाव	०५
२	श्रीप्रह्लाद-लीला का नाट्य-मंचन	०७
३	संगीत का सार 'नृत्याराधन'	११
४	धर्म-मर्यादा के आदर्श 'श्रीराम'	१३
५	परम स्नेह-वात्सल्यमयी 'बाबाश्री की दीदीजी'	१६
६	ब्रजभावभावित 'श्रीराधा बाबा'	२०
७	संगीत-पथ प्रदर्शक संत 'पं. ओंकारनाथ ठाकुर'	२४
८	श्रीधाम की आराधना	२५
९	श्रीधामवास का स्वरूप	२८
१०	श्रीब्रजप्रेम-प्रदायिका 'यमुनाजी'	३०
११	गौपालन से ही सुख-समृद्धि	३२

।। राधे किशोरी दया करो ।।

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

INSTAAL करें --- PLAY STORE से-----

MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से FREE - DOWNLOAD कर सकते हैं व सुन सकते हैं ।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले ।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है ।

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल** , प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर , गह्वरवन, बरसाना, मथुरा** (उ.प्र.)

mob. **राधाकांत शास्त्री** .....9927338666, Website :www.maanmandir.org , (E-mail :info@maanmandir.org)

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – **सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।** (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

प्रकाशकीय

'आराधना' करो तो इष्ट खिंचता है, आता है । 'राधा' नाम रटोगे तो राधारानी सम्मोहित होकर के आयेंगी । दो अक्षर वाले जिस 'राधा' नाम को श्रीकृष्ण रटते रहते हैं, वह यदि हमारे ध्यान में भी आ जाय तो सबसे बड़ा सहारा मिल जाए । श्रीकृष्ण का भी एकमात्र सहारा 'राधा' नाम है, इस परमतत्व को जानना कोई छोटी बात नहीं है । ब्रह्मज्ञान के बारे में भगवान् ने गीता में कहा है –

भक्त्या मामभिजानाति.....विशते तदनन्तरम् ॥ (श्रीगीताजी १८/५५)

तुम ब्रह्म-रूप हो जाओगे पर मेरे रस-रूप को नहीं जान पाओगे । ब्रह्मरस के आगे भी कोई रस है और वह है भक्तिरस, वह भक्तिरस 'राधारानी' ही देने वाली हैं । धन्य हैं श्रीराधारानी के चरण, जिनमें श्रीकृष्ण हर क्षण गिरते हैं । जितने साधन हैं हम उनको नहीं जान सकते, हम अन्धे हैं, अन्धा क्या देखेगा और क्या जानेगा ? लेकिन एक बात है । **'अन्धे की लकड़ी-सा, राधा नाम हमारा है ।'** जो लोग श्रीभगवान् के लिए नाचते-गाते हैं, ये उन पर श्रीप्रभु की बहुत बड़ी कृपा है । नृत्य सबसे बड़ी उपासना है । नृत्य को केवल एक कला नहीं समझना चाहिए, 'नृत्य' श्रीभगवत्प्राप्ति का एक सबसे सरस माध्यम है । श्रीमीराजी के साथ 'गिरिधर गोपाल' नाचते थे तो उसके लिए उन्होंने कोई जप-तप नहीं किया था; तो क्या किया था ? उन्होंने स्वयं बताया है – **'पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे ।'** रात-रात भर श्रीमीराबाईजी जंगलों में घूमतीं, नाचतीं थीं । लोग उन्हें पागल कहते, बावरी कहते, कुलनाशिनी कहते थे लेकिन उन पर दुर्वचनों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता था क्योंकि **'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, आन मिलो अविनासी रे ।'** उनको अविनाशी (गिरिधर गोपाल) की प्राप्ति हो गई थी । भक्तिमार्ग में इष्ट को रिझाने की ये सबसे बड़ी आराधना (नृत्य-गान) है, जो एक बहुत बड़ा रस का योग है । जो लोग प्रभु के लिए नाचते हैं, उनका रोम-रोम भगवान् को अर्पित होता है । उनका अंग-अंग प्रभु-प्रेम में डूबा होता है परन्तु नाच वही सकता है जिसको श्रीजी कृपा करके नचाती हैं । पद्मपुराण में लिखा है – **पद्भ्यां भूमेर्दिशोदृग्भ्यां दोर्भ्यां चामङ्गलमं दिवः । बहुधोत्सार्यते राजन् कृष्ण भक्तस्य नृत्यतः ॥**

जो भगवान् के सामने कीर्तन में नृत्य करता है, उसके सब पाप जल जाते हैं । नाचते-नाचते भक्त की दृष्टि जिधर भी जाती है, उन सब दिशाओं के पाप जल जाते हैं । नाचते-नाचते कीर्तन में भक्त जब अपनी भुजाओं को ऊपर कर लेता है तो आकाश, स्वर्गादि में जो पाप हो रहे हैं; वे सब जल जाते हैं । श्रीहरिरामव्यासजी कहते हैं –

नैन न मूँदे ध्यान को, अंग न कीन्हे न्यास । नाच-गाय रासहि मिले, करि वृन्दावन वास ॥

हमने कभी भी आँख बंद करके ध्यान नहीं लगाया, न ही अङ्गन्यास-करन्यास ही किया । बस नाच-नाच के, गा-गाकर श्रीप्रभु की दिव्य रासलीला में प्रवेश प्राप्त कर लिया । श्रीमीराजी ने भी कहा है –

नाचत घुँघरू बाँध के, हाथन लै करताल । देखत ही हरि सों मिली, तृन सम तजि संसार ॥

गाने-बजाने-नाचने से ही मैंने (मीराजी ने) उन्हें (श्रीठाकुरजी को) तिनके के समान संसार को छोड़कर प्राप्त कर लिया । श्रीप्रह्लादजी नाचते थे, श्रीप्रभु-प्रेम में लज्जा छोड़करके जोर-जोर से नाचते थे, कभी-कभी अपने-आप को ही भूल जाते थे –

नदति क्वचिदुत्कण्ठो ..... तन्मयोऽनुचकार ह ॥ (श्रीभागवतजी ७/४/४०)

पद्मपुराण में कहा गया है कि नृत्य एक यज्ञ है, इससे बड़ा कोई यज्ञ नहीं है । स्वयं चैतन्यमहाप्रभुजी अलात्त चक्र (आग के गोले) की तरह नाचते थे । श्रीमहाप्रभुजी कहते थे – **यो हि नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहुसुभक्तितः ।**

स निर्दहति पापानि कल्पान्तर शतेश्वपि ॥ (स्कन्दपुराण ७.४/२३/७४)

भगवान् के सामने जो नाचता है, उसके सैकड़ों कल्पों (लगभग ८ अरब ३० करोड़ वर्ष का एक कल्प होता है और ऐसे ही सैंकड़ों कल्पों) के पाप नष्ट हो जाते हैं ।

कार्यकारी अध्यक्ष

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीबलदेवप्रसादशुक्लजी का प्रतिभाशाली प्रभाव

भगवान् व उनके भक्तों का अवतरण इस धराधाम में लोक-कल्याण के लिए ही हुआ करता है, उनके बाल्यकाल की सामान्य चेष्टाओं और क्रियाकलापों से उनके भविष्य की सूचना मिल जाती है । प्रत्येक व्यक्ति के पास चार बल होते हैं – (१) मातृ-पितृ बल (२) गुरु-बल (३) इष्ट-बल (४) आत्मबल । इन चार बलों के पुंजीभूत स्वरूप हैं हमारे पूज्य बाबा (श्रीरमेशबाबा) महाराज । इनके पिता श्रीबलदेवप्रसाद शुक्ल, जो 'शुक्ल भगवान्' के नाम से प्रसिद्ध थे, इनके व्यक्तित्त्व की छाप 'हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी' के जनक पं. मदन मोहन मालवीयजी पर अक्षुण्ण रूप से थी; वे प्रतिमास इनके सम्मान के लिए इन्हें दस रुपये उस समय भेजा करते थे । प्रारम्भ में शुक्लजी आई. जी. पुलिस ऑफिस में सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस (उच्च पुलिस अधिकारी) थे, जिन्होंने कुख्यात डाकू सुल्ताना सिंह को धराशायी किया था । उस समय भारत अंग्रेजों के अधीन (गुलाम) था, उच्च पदों पर भारतीयों को कम अवसर मिलता था । सन् १९४२ के आन्दोलन के बाद शुक्लजी ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया था और वे 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' – आन्दोलन में सक्रिय हो गये थे ।

प्रयाग में एक बार मुट्ठीगंज स्थित कृष्णकुञ्ज में रीवां नरेश शंकरगढ़ के राजा सपरिवार आये थे । वहाँ बड़ी ही धूम से कीर्तन होता था । वहीं पर एक ज्योतिषीजी भी आये, वे हस्त रेखायें देखकर भूत-भविष्य की घटनाओं के विषय में बता दिया करते थे । वे राजघराने की महिलाओं की हस्त रेखायें देखकर उनका फल बता रहे थे । श्रीशुक्लजी की भी इच्छा हुई उन्हें रेखा दिखाने की परन्तु उनके द्वारा उपेक्षा का व्यवहार देखकर शुक्लजी के स्वाभिमान को भारी ठेस लगी । अब तो वे लग गये तन्मयता से ज्योतिष-विद्या का अध्ययन करने में और थोड़े ही समय में ऐसा चमत्कार प्राप्त कर लिया कि लोग कागज़ पर हाथ का प्रिंट छापकर इनके पास भेज देते और उसी प्रिंट को देखकर हस्त रेखाओं का फल भेज दिया करते थे । अब तो इनके पाण्डित्य, वैदुष्य की ख्याति दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी । कुछ असहिष्णु लोगों ने इनके वैदुष्य एवं ज्ञान की परीक्षा के उद्देश्य से एक विधवा स्त्री को इनके पास भेजा । वह श्रृंगार करके माँग भरकर, चूड़ियाँ पहनकर बड़ी ठनक से इनके पास आई । उसके बिना ही कुछ कहे श्रीशुक्लजी ने उससे कहा कि यह सब श्रृंगार आदि तुम्हें शोभा नहीं देता क्योंकि तुम्हारे पति नहीं हैं । इतना सुनते ही वह स्त्री दंग रह गयी और शुक्लजी के चरणों में गिर पड़ी व क्षमा माँगने लगी ।

श्रीशुक्लजी ने पुत्र की कामना से दो विवाह किये थे । पहली पत्नी से दो पुत्रियाँ हुईं, जिनके नाम हैं छन्नो और मन्नो । छन्नो दीदी, जिन्हें 'ओमवती' भी कहते हैं, उनसे सुशील कुमार हुए, जो कन्नौज में डिग्री कॉलेज में प्रोफेसर रहे । मन्नो दीदी बड़ी उदार व सम्पन्न थीं । इनके यहाँ एक हजार बीघा जमीन थी, बहुत से बाग़-बगीचे और हाथी थे । नेहरूजी प्रायः इन्हीं के हाथी पर बैठते थे । मन्नो दीदी इतनी उदार थीं कि जब कभी अपने पीहर बहादुरगंज, प्रयाग में आती थीं तो उनके वात्सल्य युक्त मधुर स्वभाव के कारण बच्चों की भीड़ लग जाती थी । वह बच्चों को खिलाने के लिए चाट वालों से पूरी ढकेल खरीद लेती थीं, उनके मन में अपने पराये का कोई भेदभाव ही नहीं था ।

पुत्र की कामना से शुक्लजी ने दूसरा विवाह किया, जब विवाह के कई वर्ष बाद भी कोई सन्तान न हुई तो ये सपत्नीक तारकेश्वर गये और तीन दिन तक बिना कुछ खाये-पिये कठोर तप किया । एक दिन इन्हें स्वप्नादेश हुआ कि घर जाओ, तुम्हारे यहाँ एक भक्त कन्या का जन्म होगा । शुक्लजी घर लौट आये, एक वर्ष बाद इनके यहाँ एक कन्या का जन्म हुआ । तारकेश्वर भगवान् की कृपा से जन्म होने के कारण इनका नाम 'तारकेश्वरी' रखा गया । ८-१० वर्ष बीत गये, शुक्ल-दम्पत्ति की पुत्र-प्राप्ति की कामना पूरी नहीं हुई । एक बार वे एक हजार रुपये लेकर तीर्थयात्रा करने के लिए रामेश्वरम् पहुँचे । दैव

इच्छा बड़ी बलवती होती है । माताजी जब वहाँ समुद्र में स्नान कर रही थीं तो रुपयों की थैली समुद्र में गिर गयी, उसमें ७०० रुपये थे । माताजी बहुत दुःखी हुईं । शुक्लजी बड़े ही धैर्यवान और निर्लिप्त व्यक्ति थे । उन्होंने कहा – 'देखो, चिन्ता मत करो, पैसा मिल जाएगा ।' स्नान करके शुक्लजी कुछ ही दूर चले थे कि उनकी भेंट एक अजनबी पुरुष से हुई जो लम्बा-चौड़ा, हृष्ट-पुष्ट शरीर का था । उसने शुक्लजी को प्रणाम किया । उसके ललाट की रेखायें देखकर शुक्लजी ने उससे कहा कि तुम्हें तो फाँसी होनी चाहिए थी, मालूम पड़ता है कि तुम भागकर आये हो । इतना सुनते ही उस आदमी का पसीना छूट गया, वह घबड़ा गया । शुक्लजी ने कहा – 'तुम घबराओ नहीं, अपने बारे में सच-सच बताओ ।' उस व्यक्ति ने कहा – 'पण्डितजी ! मैंने सात हत्यायें की थीं । मेरे नाम पर वारंट निकल चुके थे, इसलिए मैं इधर भाग आया ।' उसने ५०० रुपये शुक्लजी को भेंट किए और आशीर्वाद माँगा । ऐसे निःस्पृह, धैर्यवान एवं आत्मविश्वासी थे शुक्लजी ।

पुत्र की कामना से शुक्लजी ने 'रामेश्वरम्' में सुदृढ़ निष्ठा के साथ तप किया कि यदि पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई तो मैं प्राण त्याग दूँगा । भक्तों के ऐसे संकल्प के आगे भगवान् भी हार मान लेते हैं । स्वप्न में भगवान् शिव का आदेश प्राप्त हुआ कि जाओ, तुम्हें श्रीकृष्णभक्त पुत्र की प्राप्ति होगी, जो विश्वविख्यात होगा । अब तो शुक्लजी के आनन्द का पारावार न रहा । एक वर्ष के बाद ही पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जिसका नाम रखा गया – रामेश्वर प्रसाद । पिताजी की उदारता, भक्तिभाव, विद्वत्ता, सरलता, सहजता आदि के संस्कार तो इनमें गर्भावस्था में ही पड़ चुके थे ।

शुक्लजी में उदारता सहज थी, उसमें कोई दिखावा नहीं था । अपने निवास स्थान, बहादुर गंज से नित्य इक्का-ताँगा से गंगा-स्नान के लिए जाया करते थे और वहाँ से कई मन सब्जी खरीद लाते थे, उसे गरीबों को और साधु-ब्राह्मणों को बाँटते हुए आते थे । घर पहुँचते-पहुँचते दो-चार किलो सब्जी ही बच पाती थी । शुक्लजी के पास गंगा के किनारे झूसी की तरफ ८० बीघा जमीन थी, जो आज के समय में अरबों की सम्पत्ति थी, उसे भी उन्होंने दान कर दिया । लोगों ने उनसे कहा कि कुछ जमीन अपने पुत्र रमेश के लिए तो रख लीजिये । शुक्लजी ने कहा – 'नहीं, यह जहाँ भी रहेगा, राजा बनकर रहेगा, इसको कहीं कोई कमी नहीं रहेगी ।'

एक बार बचपन में रमेश ने अपने पिताजी के कार्यालय में से उनकी अनुपस्थिति में एक कलम ले लिया । आवश्यकता पड़ने पर जब पिताजी को कलम नहीं मिला, पूछताछ की तो बालक रमेश ने कहा कि मैंने लिया था । उस दिन पिताजी ने इनकी पिटाई की व डाँटकर शिक्षा देते हुए कहा कि अब भविष्य में कभी कोई वस्तु बिना बताये या बिना पूछे नहीं लेनी है । उस घटना से ऐसा प्रभाव हुआ कि बिना पूछे या बताये किसी वस्तु को लेना तो दूर रहा, छुआ भी नहीं ।

पुराने ज़माने में भारत में बड़े घरों में ऐसी प्रथा थी कि जब बालक छोटा होता था, बोल भी नहीं पाता था तो उसकी मनोवृत्ति, रुचि को जानने के लिए एक उत्सव के रूप में उसके पास अनेकों प्रकार की वस्तुयें मिठाई, खिलौने, पुस्तक आदि रख दी जाती थीं और देखा जाता था कि बालक कौन-सी वस्तु छूता है ? छोटे-से शिशु के रूप में बाबा के सामने भी अनेक प्रकार की वस्तुयें मिठाइयाँ, खिलौने, चाँदी के सिक्के और छोटी-सी गीता रखी गयी । छोटे से बाबा ने अन्य वस्तुओं को छोड़कर छोटी-सी गीता को उठा लिया । उनकी ऐसी चेष्टा को देखकर विद्वानों ने यह निर्णय किया कि यह बालक संसार से विरक्त, प्रलोभनों से दूर उद्भट विद्वान् होगा । इनके जन्म के बाद देश में अनेक प्रकार के आन्दोलन, झगड़े, बलवे (दंगे) आदि बहुत हुए क्योंकि उन दिनों भारत गुलाम था, अंग्रेजों का शासन था । बलवों, लड़ाई-झगड़े, आन्दोलन आदि के कारण लोग इनको बलवाई कहने लगे । इसकी छाप बाबा के जीवन में पूर्ण रूप से देखी गयी । इनका समग्र जीवन ही संघर्षों से युक्त रहा । असत्य के आगे ये कभी झुके नहीं । बड़ी-बड़ी प्रबल शक्तियों को झुकना पड़ा और अन्त में इनकी विजय हुई ।

अध्यक्ष
रामजीलाल शास्त्री,
श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीप्रह्लाद-लीला का नाट्य-मंचन

प्रह्लादजी को मारने का प्रयास गर्भ के भीतर भी किया गया था, अन्य पुराणों में ऐसा वर्णन मिलता है । दैत्य-गुरु शुक्राचार्य ने गर्भ में ही प्रह्लादजी को मारने के अनेकों प्रयत्न किये थे किन्तु गर्भ में ही प्रह्लादजी को असली आस्था प्राप्त हो गयी थी । चतुःश्लोकी भागवत में एक बड़ा ही विचित्र श्लोक है – **एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।**
अन्वयव्यतिरेकभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥ (श्रीभागवतजी २/९/३५)

भगवान् की भक्ति सर्वत्र और सर्वदा करनी चाहिए । 'सर्वत्र' माने सभी स्थानों में 'चाहे पाताल हो, पृथ्वी हो अथवा ब्रह्माण्ड का कोई कोना हो' तथा 'सर्वदा' माने किसी भी अवस्था में 'जन्म के पहले गर्भावस्था हो, गर्भ के बाद बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था और मृत्यु – ये पाँच अवस्थायें होती हैं ।' पाँचों अवस्थाओं में जो अडिग (अविचल) रहता है, उसी का नाम महाभागवत है । प्रह्लादजी ऐसे ही महाभागवत थे, जिन्हें गर्भ के भीतर और गर्भ से बाहर जन्म लेने के पश्चात् भी मारने के अनेकों प्रयास किये गये किन्तु वे जरा भी विचलित नहीं हुए, अपनी भक्ति में सदा सुदृढ़ बने रहे ।

(गर्भवती माँ कयाधू का राजपुरोहित से संवाद)

(प्रह्लादजी माता कयाधू के गर्भ में हैं, प्रसव काल अति निकट आ गया है । कयाधूजी अन्तःपुर में अनेक प्रकार के स्वप्न देख रही हैं । कभी-कभी तो जागने पर साक्षात् अनुभव कर देख रही हैं ।)

स्वप्न में दर्शन – देवी-देवता भक्त गण नाचते-गाते आ रहे हैं – "कृष्ण मेरा-तेरा प्यार कभी न बदले; चाहे माँ बदले, चाहे बाप बदले; चाहे ये जनम सौ बार बदले.....।" (संगीतमय गान होता है, श्रीभक्तवत्सल भगवान् की जय..... बीच-बीच में जयकारा लगा रहे हैं ।)

साक्षात् दर्शन – अनेक ऋषि-मुनि सन्त भक्त जनों का समूह श्रीविष्णु भगवान् की पूजा-अर्चना आरती कर रहे हैं ।

श्रीहरि की जय हो..... जयकार हो रही है । संकीर्तन हो रहा है – "कृष्ण-कृष्ण कह बारम्बारा, चक्र सुदर्शन है रखवारा । " (थोड़ी सी देर में अन्तःपुर में गर्भवती कयाधूजी के पास राजपुरोहितजी आ जाते हैं, उन्हें कयाधूजी सम्पूर्ण वृत्तान्त (स्वप्न का व साक्षात् जो देखा है) बताती हैं ।)

कयाधूजी – हे पुरोहितजी ! मैं अपने मन की बात कहने में संकोच करती हूँ ।

पुरोहितजी – हे सौभाग्यवती ! तुम ठीक कहती हो, वर्तमान की परिस्थिति के अनुसार तो अपने हृदयगत भावों को छिपाने में ही भलाई है ।

कयाधूजी – परन्तु हे महात्मन् ! आप जैसे हितैषियों से दृष्टिगोचर हुए दृश्यों को बतलाने में ही मुझे सन्तुष्टि होगी ।

पुरोहितजी – हे महाभागे ! आपने जो कुछ भी देखा हो, निःसंकोच बताकर आत्मसंतोष को प्राप्त करो ।

कयाधूजी – महाराज ! मैं स्वप्न में कभी-कभी बड़े-बड़े देवगणों, भक्तजनों को कीर्तन करते व जयकार लगाते तथा श्रीहरि की पूजा-अर्चना-आरती करते हुए देखती हूँ । कभी-कभी तो जागने पर प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है ।

पुरोहितजी – हे पुण्यशीले ! तुम्हारे गर्भ से भवाटवी में भटक रहे जीवों का कल्याण करने के लिए एक महाभागवत का जन्म होने वाला है, उसी के ये शुभ संकेत हो रहे हैं । मेरी तुमसे यही विनती है कि इस समय ये बात कहीं भी किसी के कानों तक नहीं जानी चाहिए ।

कयाधूजी – हे हितचिन्तक महाजन ! मैं आपकी आज्ञा का दृढ़ता से पालन करने की पूर्णतया कोशिश करूँगी ।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का
Account number दिया जा रहा है –
SHRI MATAJI GAUSHALA, GAHVARVAN,BARSANA, MATHURABank – Axis Bank Ltd , A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN, MOB. NO. -9927916699

(श्रीप्रह्लादजी का जन्मोत्सव)

(जब गर्भगत् शिशु प्रह्लाद के जन्म का समाचार हिरण्यपुर के नगरवासियों (बाल-वृद्ध, नवयुवक-नववधुओं इत्यादि) को मिल जाता है तो वे सभी अपने-अपने सामर्थ्यानुसार विविध भाँति से बधाई लेकर नाचते-गाते हुए आने लगते हैं ।)

प्रहलाद-बधाई होय, अरे होय मेरे भैया ।

कयाधू ने जन्म्यौ लाला,
जहाँ हो रहे सब बेहाला,
आनन्द रसमय उत्सव होय, अरे होय मेरे भैया ।
घर-घर बजी बधाई,
बड़ी धूम मची शहनाई,
अति प्रेम मुदित सब होय, अरे होय मेरे भैया
श्री राग-रागिनी गावैं,
बहुगुनी गवैया आवैं,
परिपूरन मन की होय, अरे होय मेरे भैया ।
अद्भुत बालक सब हेरें, बैठी छवि मन में मेरे,

जननी परमानन्दित होय, अरे होय मेरे भैया
देव-मनुज भी गावैं,
अप्रकट ख़ुशी मनावैं,
प्रगट परम भागवत होय, अरे होय.....
दै सबको आह्लाद,
जासे नाम पर्‌यौ प्रह्लाद,
सुनतहि मंगल सबको होय, अरे होय मेरे भैया
जाहि कथा-कीर्तन भावै,
भक्तन की कृपा पावै,
असली आज्ञा पूरी होय, अरे होय.....

बाल्यावस्था में श्रीप्रह्लादजी की झाँकी

(लगभग ४ वर्ष की आयु है बालक प्रह्लाद की, जो एकान्त स्थल पर किसी उच्च स्थान पर सुमधुर स्वरों में ताली बजाते हुए कीर्तन (श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव) कर रहे हैं, जिनकी छवि देखने में बड़ी ही मनमोहिनी लग रही है । प्रह्लादजी के दर्शनार्थ रात-दिन लोगों की भीड़ लगी रहती है । कुछ हिरण्यपुर के नगर निवासी जन (पुरुष-महिलायें) प्रह्लादजी के दर्शन करने आये हैं । सबसे पहले नगर वधुएँ झुण्ड के साथ दिव्य बालक के दर्शनानन्द में परस्पर वार्तालाप करती हैं)

नगर वधू १ – अरी बहन ! इस बालक के रूप-सौन्दर्य की मनमोहिनी छवि को देखकर किसका मन आकर्षित नहीं होगा ?

नगर वधू २ – तुम बिल्कुल ठीक कह रही हो बहन, इसकी विचित्र लीलाओं की चर्चा तो जगह-जगह हो रही है ।

नगर वधू ३ – तभी तो इसके दर्शन किये बिना किसी को भी चैन नहीं मिल रहा है ।

नगर वधू ४ – अरी सद्भाग्या ! इस बालक की मधुर हँसी और सुन्दर बोलन-चलन ने सभी का मन मोह लिया है ।

नगर वधू ५ – अरी सखी ! इसीलिए तो केवल दानव-दैत्यों की ही बात नहीं, बड़े-बड़े देवी-देवता भी वेष बदलकर प्रह्लाद के दर्शन कर रहे हैं ?

नगर वधू ६ -हे महाभागा ! बालक प्रह्लाद तो अन्य बालकों से भिन्न ही दिखाई पड़ता है । इसके स्वभाव में बच्चों जैसी चंचलता तो बिलकुल ही नहीं है ।

नगर वधू ७ - अरी भाग्यवान् ! इसके दिव्य गुणों ने तथा रूप-लावण्य ने सभी को ऐसा अधीर कर दिया है कि दिन-रात में एक बार तो यहाँ इसके पास आना ही पड़ना पड़ता है, तभी सुख-शान्ति मिलती है ।

नगर वधू ८ – हे देवियो ! लाला प्रह्लाद के दर्शन मात्र से सच्चे संतोष की अनुभूति व असली आनन्द आता है ।

नगर वधू ९ – क्योंकि इस अलौकिक बालक में समत्व भाव है, इसीलिए तो श्रीनारद मुनि ने इसे निष्किल्बिष महाभागवत कहकर सम्बोधित किया है ।

नगर वधू १० – हे महाभाग्यवान् ! इस अनुपम बालक में जड़-चेतन सम्पूर्ण सृष्टि में कहीं भी लेशमात्र राग-द्वेष नहीं है, तभी तो सर्वत्र श्रीहरि के भाव से भावित होकर उन्हीं के दर्शन की नित्य-निरन्तर लालसा व तड़पन रहती है ।

(इसके बाद बालक प्रह्लाद की जय हो ..... की जयकार करते हुए नगर के नवयुवक पुरुषों का प्रवेश होता है प्रह्लाद के दर्शन के लिए .....)

नवयुवक १ – अरे भैया ! बालक तो हमने बहुत देखे हैं लेकिन ये तो कुछ विशेष ही है ।

नवयुवक २ – ठीक कह रहे हो भैया आप ! इसके दर्शन से ही ऐसा आनन्द आता है कि यहाँ से जाने का मन ही नहीं करता है ।

नवयुवक ३ – हे भाइयो ! हमें तो ऐसा लगता है कि इसका दर्शन-भजन करना सभी साधनों का सच्चा फल है ।

नवयुवक ४ – हे साथियो ! इसे तो लोग राजकुमार (दैत्यराज का पुत्र) ही समझ रहे हैं लेकिन इसके वास्तविक स्वरूप को कोई विरले ही कृपा से जान पायेंगे ।

नवयुवक ५ – अरे भैयाओ ! हमने तो ऐसा सुना है कि महात्मा नारदजी के विशेष अनुग्रह से उनका सत्संग इसे गर्भ में ही मिल गया है ।

नवयुवक ६ – तभी तो इसके ऐसे भक्तियुक्त संस्कार हैं, जो बड़े-बड़े साधनों से भी मिलना अत्यन्त कठिन हैं ।

नवयुवक ७ – लेकिन भैया ! इसका जन्म ऐसे वंश (कुल-खानदान) में हुआ है, जहाँ का रहना दाँतों के बीच में जीभ की तरह है ।

नवयुवक ८ – अरे मेरे भाइयो ! जब सच्चे सन्त-महात्माओं की कृपा हो जाती है तो विरोधी शक्तियाँ बाल-बाँका भी नहीं कर सकती हैं । (सभी एक साथ "महाभागवत प्रह्लाद" की जयकार लगाते हैं ।)

(माँ कयाधू से प्रह्लाद के भाई-बन्धु व मित्रों का संवाद)

(बालक प्रह्लाद के भाई (अनुह्लाद, सह्लाद, हल्लाद) व मित्रगण खेलते-कूदते, शोर मचाते हुए माँ कयाधू के पास आते हैं.....)

माँ कयाधू – अरे ! प्रह्लाद दिखाई नहीं दे रहा है तुम लोगों के साथ ।

अनुह्लाद – माँ ! हमारी मण्डली में प्रह्लाद का मन नहीं लगता है ।

कयाधूजी – बेटा ! तुम सब लोग उसे कैसे भी समझा-बुझाकर, फुसलाकर अपने साथ में ही रखा करो ।

सह्लाद – माँ ! हम सबने बहुत-से प्रयास किए प्रह्लाद को अपने साथ में रखने के लेकिन उसके भजन-ध्यान व मंद-मंद मुस्कुराहट से मोहित होकर सब लोग परास्त हो गये ।

हल्लाद – मैया ! हम सब लोग शोरगुल करते हुए आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं परन्तु प्रह्लाद के शान्त-गम्भीर चित्त पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है ।

मित्र १ – अरी मैया ! प्रह्लाद भैया की दुनिया तो अलग ही है, हमारे बीच में रहकर भी उसका मन किसी अलौकिक भाव में ही निमग्न रहता है ।

मित्र २ - भैया प्रह्लाद तो भावसिन्धु की तरंगों में ही डूबे रहते हैं ।

मित्र ३ – हम लोगों के खेल-कूद का उस पर कोई असर ही नहीं होता है ।

माँ कयाधू जी – हे मेरे बालको ! तुम सब ठीक ही कह रहे हो, ये तो उसमें श्रीनारदमुनि के सत्संग के संस्कार दिखाई दे रहे हैं ।

मित्र ४ – (आश्चर्य चकित होकर) नारदजी महाराज के सत्संग के संस्कार ! ये कैसे ? हमारी समझ में नहीं आया माताजी ।

माँ कयाधू – बेटा ! जिस समय मैं गर्भवती थी, देवराज इन्द्र मुझे बलात् खींचकर ले जा रहा था, उस समय देवर्षि नारदजी ने ही मेरी रक्षा की थी ।

मित्र ५ – माताजी ! कैसे नारद मुनि ने रक्षा की ?

कयाधूजी – जब नारद जी ने इन्द्र को गर्भगत् शिशु प्रह्लाद की अलौकिक प्रतिभा के बारे में बताया, तब उसने मुझे छोड़ दिया; उस समय महात्मा नारदजी ने मुझे अपने आश्रम में शरण देकर श्रीहरिभक्ति का उपदेश दिया, जिसका सबसे ज्यादा प्रभाव प्रह्लाद पर ही पड़ा ।

अनुह्लाद – माँ ! आप मुझे ये कथा सुनाती थीं, अब ये सब बातें मुझे भी याद आ रही हैं ।

सह्लाद – हाँ-हाँ माँ ! 'अनुह्लाद भैया' मुझे और हल्लाद को भी ये बातें बताते थे ।

माँ कयाधू – हे पुत्रो ! अब मैं महामुनि नारदजी व पुरोहितजी की अहैतुकी अनुकम्पा-दया को स्मरण कर अति आनन्दित हूँ । लगता है मेरा 'प्रह्लाद' हम सबका बहुत बड़ा उद्धारक बनेगा ।

(तभी प्रह्लादजी की मित्र-मण्डली ३ बार जयघोष करती है – 'भैया प्रह्लाद की .....जय हो')

प्रह्लादजी व माँ कयाधू की पारस्परिक वार्तालाप

(एक दिन प्रातःकाल प्रह्लादजी अपने राजभवन के बगीचे में पहुँच उसकी प्राकृतिक मनमोहिनी छटा (रंग-बिरंगे खिले हुए पुष्प, पक्षियों का कलरव, भौंरों का गुंजार इत्यादि) देखकर अत्यन्त हर्षित हो जोर-जोर से हँसने लगते हैं, उसी समय उनकी माँ कयाधू ढूँढती हुई आ जाती हैं और दूर खड़ी होकर प्रह्लाद के क्रिया-कलाप देखती हैं .....)

प्रह्लादजी – (मंद-मंद मुस्कुराते हुए) आ ऽ ऽ हा ऽ ऽ ! कितनी सुन्दर प्रकृति है, इसने तो मेरे मन को मोह लिया है –

"नाम तुम्हारा तारनहारा, कब तेरा दर्शन होगा । जिसकी रचना इतनी सुन्दर वो कितना सुन्दर होगा । । "

(फिर प्रह्लादजी फूलों, भौंरों, पक्षियों से बात करते हुए पूछते हैं .....)

प्रह्लादजी – हे रंग-बिरंगे पुष्प ! हे सारग्राही भौंरे !! हे मधुर कलरव करने वाले मेरे पक्षियो ! बताओ न मुझे श्रीहरि कब दर्शन देंगे ? (इतने ही में कयाधू जी प्रह्लाद के निकट आकर कहती हैं .....)

माँ कयाधू – अरे बेटा ! मैं तुझे ढूँढती-ढूँढती परेशान हो गई हूँ, इतनी देर से तू यहाँ किससे बात करते हुए क्या पूछ रहा है ?

प्रह्लादजी – माँ ! अपने श्रीहरि से मिलने की राह पूछ रहा हूँ इन प्रफुल्लित लता-पता-पुष्प आदि से ।

माँ कयाधू – बेटा ! तू कहीं भ्रमित तो नहीं हो गया है, भला कहीं ये तुम्हें बोलकर बतायेंगे ।

प्रह्लादजी – माँ ! इन सबमें श्री हरि साक्षात् लीला कर रहे हैं, उनके बिना ये इतने सुगन्धित, प्रसन्नचित्त, आनन्दित कैसे हो सकते हैं ?

माँ कयाधू – (प्रह्लाद के सिर पर हाथ फेरते हुए) अरे मेरे लाड़ले ! इतने छोटे मुँह से बड़े-बड़े ज्ञान-भक्ति की बातें करना तेरे लिए उचित नहीं जान पड़ती हैं, अभी तो तू

बच्चों के साथ खेल-कूद कर ।

प्रह्लादजी – हे माँ ! आप क्या कह रही हैं ? श्रीहरि की भक्ति करने की असली अवस्था तो बाल्यावस्था ही है ।

माँ कयाधू – अरे बेटा ! बड़े-बूढ़े होकर लोग भजन-भक्ति करते हैं ।

प्रह्लादजी – माँ ! आप पूजा-अर्चन में कैसे पुष्प चढ़ाती हैं ?

माँ कयाधू – मेरे लाल ! पूजा-सेवा में मुर्झाये हुए फूल कौन चढ़ाएगा, उसमें तो नव-नवायमान खिले हुए पुष्प ही चढ़ाए जाते हैं ।

प्रह्लादजी – (हँसते हुए) माँ ! समस्या का सही समाधान आपने ही अपने मुख से कह दिया । बचपन (बालपन) खिला हुआ फूल है, बड़प्पन-वृद्धापन खिलकर मुर्झाने वाले पुष्प हैं । इसलिए श्रीहरि बालकपन की भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ।

माँ कयाधू – बेटा ! इन बातों को सुनकर तुम्हारे पिताजी बहुत रुष्ट हो जायेंगे ।

प्रह्लादजी - क्यों ? पिताजी को तो सत्य सिद्धान्त सुनकर प्रसन्न होना चाहिए ।

माँ कयाधू – मेरे प्यारे पुत्र ! तुम्हारे पिता के भाई को भगवान् विष्णु ने देवताओं का पक्ष करके मार डाला था, इसीलिये वे श्रीविष्णु से बदला लेने के लिए विरोधी बन गए हैं ।

प्रह्लादजी – हे माँ ! भगवान् विष्णु कभी किसी का अन्यायपूर्वक पक्षपात नहीं करते हैं, उनके पक्षपात में सभी जीवों के प्रति करुणा-कृपा व कल्याण छिपा रहता है ।

माँ कयाधू – बेटा प्रह्लाद ! तुम्हें तो अपने पिता का आज्ञाकारी होना चाहिए, सत्पुत्र का सच्चा कर्तव्य तो यही है ।
प्रह्लाद – (मुस्कुराते हुए) हे मेरी माँ ! एक सच्चे पिता की असली आज्ञा का पालन श्रीहरि की आराधना करने में ही परिपूर्ण होता है ।
माँ कयाधू – अरे बेटा ! ये बात तो सही है लेकिन तेरे बाप को बिल्कुल समझ में नहीं आएगी ।
प्रह्लाद – हे भोली माँ ! श्रीहरि की भक्ति करने-कराने का सबको समान अधिकार है । हम पिताजी को अच्छी तरह से समझा देंगे । हम सब लोगों को भगवान् श्रीहरि का प्यारा-प्यारा, मधुर-मधुर नाम-संकीर्तन करना चाहिए । श्रीहरि के नाम की मिठास के आगे सांसारिक सुख की सभी मिठाई फीकी लगने लगती है ।
(श्रीप्रह्लादजी कीर्तन करने लगते हैं ..... 'हरि-हरि बोल हरि-हरि बोल, मुकुन्द माधव गोविन्द बोल ।')

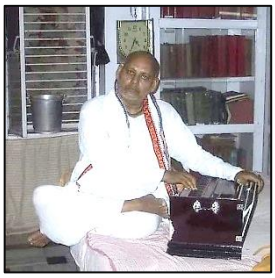

संगीत का सार 'नृत्याराधन'

हरिवंशपुराण में सप्त स्वर, ग्राम-राग, तीन स्थान, मूर्च्छना, नृत्य, नाट्य तथा विभिन्न वाद्य यंत्रों का वर्णन प्राप्त होता है । लिंगपुराण से विदित होता है कि शिवजी के प्रधानगण नन्दिकेश्वर थे, उन्होंने नृत्य कला पर 'भरतार्णव' नामक विशाल ग्रन्थ लिखा, जिसमें शिवजी की विभिन्न नृत्य-मुद्राओं का वर्णन किया गया है ।

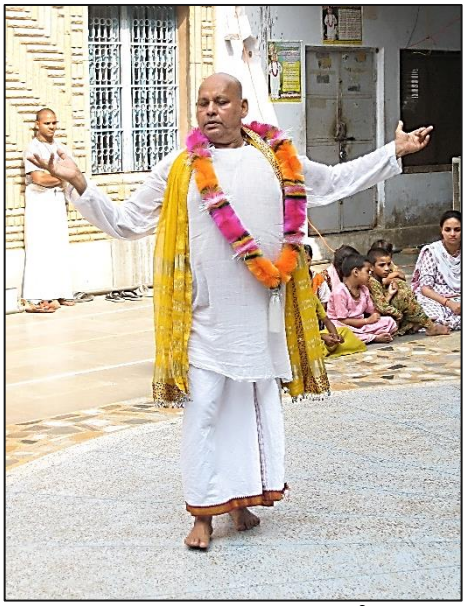

मत्स्यपुराण में उल्लेख मिलता है कि वृष्णिवंशज राजा तैत्तिरि ने अपनी पुत्री को संगीत तथा नृत्य कला की शिक्षा दिलाई थी । मार्कण्डेय तथा वायुपुराण में स्वरों, तीन ग्रामों, मूर्च्छनाओं के अतिरिक्त प्रणव, पुष्कर, मृदंग, दुदुर, वीणा तथा देव-दुन्दुभि आदि से ईश्वर का सामीप्य प्राप्त करने के लिए वाद्य-वादन किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है । इन वाद्यों को विभिन्न देवी-देवताओं से सम्बन्धित किया गया था । विष्णुपुराण में साम-गायन की महत्ता स्वीकार करते हुए लिखा गया है कि साम में प्रयुक्त होने वाली प्रत्येक ध्वनि साक्षात् ईश्वर का एक भाग है । इन पुराणों में अनेक नर्तकियों का वर्णन मिलता है, जो नृत्य द्वारा आराधना किया करती थीं । श्रीकृष्ण के संगीत को बड़े-बड़े देवी-देवता भी नहीं समझ सके । रासलीला कोई प्राकृत वस्तु तो है नहीं, फिर उसे प्राकृत शब्दों के द्वारा कैसे समझा जा सकता है ? इसीलिए श्यामसुन्दर ने उस दिव्य अप्राकृत रस को प्रकट लीला में सबके सामने प्रवाहित करने का विचार किया । रास में नृत्य इस प्रकार किया जाता है कि कृष्ण एक क्षण के लिए भी दूर नहीं होते हैं ।

रासमण्डलिबन्धोऽयं कृष्णपार्श्वमनुज्झता । गोपीजनेन नैवाभूदेकस्थानस्थिरात्मना ॥
हस्ते प्रगृह्य चैकैकां गोपिकां रासमण्डलीम् । (श्रीकिशोरीप्रसादजी, विशुद्धरसदीपिका)

इतनी चंचल गति से रास में नृत्य होता है कि गोपियाँ एक जगह पर रुकती भी नहीं हैं तथा एक क्षण को भी उनका कृष्ण से वियोग भी नहीं होता है और सबके हाथ एक दूसरे से परस्पर मिले भी रहते हैं । एक जगह स्थिर न रहने से नृत्य के सारे आवर्त होते जाते हैं । ऐसा नृत्य इस लोक में कहाँ से हो सकता है । लोक में इतना ही हो सकता है कि एक का हाथ पकड़कर दूसरे के हाथ के नीचे से निकला जा सकता है । लोक में तो नृत्य के सभी अंग पूर्ण नहीं हो सकते हैं । सब अंग करने से हाथ छूट जायेंगे । इसीलिए जीव गोस्वामीजी ने रास नृत्य के बारे में पहले ही कह दिया है कि ऐसा नृत्य पृथ्वी

में तो क्या, स्वर्ग में भी नहीं हो सकता है । इसलिए ऐसा समझना चाहिए कि रास नृत्य का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता है । अस्तु, रासोत्सव के दर्शन की लालसा से देवगण आकाश में आ गये । दुन्दुभियाँ बजने लगीं । आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी । नृत्य का ऐसा नियम है कि जब अच्छे नृत्यकार नृत्य करते हैं तो पहले डफ बजता है और जो मृदंग या तबला बजाने वाला होता है, वह बहुत देर तक उसे बजाता है – धाकिट धाकिट धाकिट धाकिट धां धां धां धां.....और उस समय नायिका एक ही मुद्रा में खड़ी रहती है । खड़ी रहती है भावोद्दीपन के लिए । यह नृत्य की पूर्व भूमिका है – पहले वाद्य बजता है, उसके बाद नृत्य का आरम्भ होता है, यह क्रम है; ऐसा नहीं कि वाद्य बजने के पहले ही नाचने लग गये, वह गँवारपना है क्योंकि संगीत इसी को कहते हैं – **'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'** पहले गाना, बजाना, उसके बाद नृत्य करना । इसीलिए रासोत्सव के प्रारम्भ में सबसे पहले बड़े-बड़े गन्धर्वपतियों ने गायन करना आरम्भ किया, उनकी स्त्रियाँ भी गाने लगीं ।

'जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम्' – (श्रीभागवतजी - १०/३३/५)

संगीत में ऑर्केस्ट्रा की सबसे पहले आवश्यकता होती है । कोई नृत्य करता है, उसके लिए भी ऑर्केस्ट्रा की जरूरत होती है । फिल्मों में गायक जब गाता है तो तीन-तीन सौ वाद्य बजाने वाले, ऑर्केस्ट्रा वाले बजाते रहते हैं । गाने वाला एक है और तीन सौ व्यक्ति वाद्य बजाते हैं । इतना सब होने पर रस पैदा होता है । महारास के प्रारम्भ में तो स्वर्ग के बड़े-बड़े गन्धर्व अपनी स्त्रियों के साथ आये और गाने लगे । स्वर्ग की ही दुन्दुभियाँ बजने लगीं । इसके बाद ब्रजगोपीजनों और रास बिहारी लाल का नृत्य प्रारम्भ हुआ । बोलो रास बिहारी लाल की जय । अनन्त गोपियाँ हैं और ताथेई-थेई के साथ अलौकिक नृत्य शुरू हो गया । श्यामसुन्दर भी गोपियों के नृत्य के साथ लय मिलाकर नृत्य करने लगे ।अब तक स्वर्ग के जितने भी वाद्य - दुन्दुभियाँ और नगाड़े आदि बज रहे थे, गन्धर्वगण गा रहे थे, इन सभी के स्वर यानी शब्द दब गये । ऐसा क्यों हुआ, ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि रास में प्रत्येक गोपी संगीत की आचार्या हैं और उनका संगीत भी अलौकिक था । गोपीजनों और श्रीकृष्ण ने जब नृत्य करना शुरू किया तो शरीर के पाँच भेदों से नृत्य किया । हस्तक, मस्तक, ग्रीवा, कटि, चरण – इन पञ्च अंगों से पंच प्रकार के नृत्य तथा इनके अवान्तर भेदों को गोपीजनों ने इतनी तीव्र गति से दिखाया कि **'वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् ।**

सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥' (श्रीभागवतजी - १०/३३/६)

इतने कंकण बजे, इतने नुपुर बजे, इतनी किंकिणियाँ बजीं और उनके साथ ही कृष्ण के भी कंकण, नूपुर और किंकिणियाँ बज उठे । इन सबका जब तुमुल शब्द हुआ तो स्वर्ग के वाद्य नगाड़े आदि सब दब गये । ऐसा अलौकिक रास नृत्य शुरू हुआ – **'तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः । मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥'** (श्रीभागवतजी - १०/३३/७)

इस श्लोक में श्रीकृष्ण के लिए 'देवकीसुत' शब्द का प्रयोग हुआ है । पुराणों के अनुसार यशोदाजी का ही एक नाम देवकी भी था । इसलिए यहाँ देवकीसुत से अभिप्राय यशोदासुत से ही है, वसुदेवजी की पत्नी देवकी से नहीं ।

नृत्य करते समय ब्रजदेवियों के बीच में श्रीकृष्ण की बड़ी विलक्षण शोभा हुई । गोपिकायें तो सोने की पुतली के समान प्रतीत होती थीं तथा यशोदानन्दन भगवान् उनके बीच में नीलमणि के समान प्रतीत होते थे । अनन्त सोने की पुतलियों के बीच में अनन्त नीलमणियों की मूर्तियाँ नृत्य कर रही हों, ऐसी उनकी छटा हुई । वे कैसे नाच रहे थे – **'पादन्यासै'** – ताल सम आने पर सबके चरण एक साथ सम पर पड़ते थे । अनन्त गोपियाँ नृत्य कर रहीं थीं किन्तु किसी का भी स्वर ताल भंग नहीं हो रहा था । इस संसार में तो पचास लोगों को नृत्य का महीनों तक प्रशिक्षण दिया जाए तब भी उनके नृत्य में कुछ न कुछ गड़बड़ी रहेगी । क्योंकि हम लोग मनुष्य हैं, हमारा मानवी संगीत है । संगीत भी कई प्रकार का होता है जैसे निषाद ग्राम का संगीत स्वर्ग आदि लोकों में गाया जाता है, मृत्यु लोक में यह संगीत है ही नहीं । **'भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै'** नृत्य के समय गोपियाँ अपनी भुजाओं को उठातीं थीं, कलापूर्ण ढंग से मुस्कुरातीं तो कभी भौहें मटकातीं । ये सब नृत्य के अंग-प्रत्यंग के विलास हैं । गोपियाँ नाचते-नाचते ताल और स्वर के साथ गाती भी थीं ।

धर्म-मर्यादा के आदर्श 'श्रीराम'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – खट्वाङ्ग के पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहु के परम यशस्वी पुत्र रघु हुए । रघु के पुत्र अज और अज के पुत्र महाराज दशरथ हुए । दशरथजी के पुत्र हुए भगवान् राम । दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी की - जय हो । देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांश से चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए, उनके नाम थे – राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न; ये चारों भाई थे । भगवान् श्री राम ने अपने पिता राजा दशरथ के सत्य की रक्षा के लिए राजपाट छोड़ दिया और वन-वन में घूमते रहे ।

'पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम्' (श्रीभागवतजी - ९/१०/४)

उनके चरणकमल इतने कोमल थे कि सीताजी जब उन्हें दबातीं तो उन चरणकमलों को स्पर्श करने से भी डरती थीं और पिता की आज्ञा से उन्हीं सुकुमार चरणों से प्रभु श्री राम वन-वन में घूमे । वन में उन्होंने रावण की बहन शूर्पणखा के नाक-कान काट दिए, खर-दूषण आदि राक्षस, जो संख्या में चौदह हजार थे, उनको नष्ट किया । रावण जानकीजी का हरण करके ले गया तो उनके वियोग में रामजी रोये । क्यों रोये ?

'स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार' – (श्रीभागवतजी - ९/१०/११)

उन्होंने यह शिक्षा दी कि जो लोग स्त्रियों में आसक्ति रखते हैं, उनकी यही गति होती है । इसके बाद उन्होंने जटायु का पिता की तरह दाह-संस्कार किया । फिर सुग्रीव आदि वानरों से मित्रता करके बालि का वध किया और वानरों की सहायता से सीता जी का पता लगवाया तथा वानर सेना के साथ समुद्र तट पर पहुँचे । भगवान् ने जब रोष के साथ टेढ़ी नजर से समुद्र को देखा तो वह जलने लगा, समुद्री जीव-जन्तु व्याकुल हो उठे । तब समुद्र भगवान् की शरण में आया, उनकी स्तुति की – 'प्रभो ! मैं मूर्ख हूँ, इसलिए आपकी महिमा को जान नहीं सका । मेरी आपसे प्रार्थना है कि मुझ पर एक पुल बाँध दीजिये, इससे आपके यश का विस्तार होगा ।' इसके बाद भगवान् राम अपनी सेना के साथ लंका गये, जिसे हनुमानजी पहले ही जला आये थे । रामजी ने लंका में रहने वाले कुम्भकर्ण आदि अनेकों शक्तिशाली दैत्यों का वध किया । उनका मरना स्वाभाविक ही था क्योंकि – **'सीताभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान्'** (श्रीभागवतजी - ९/१०/२०)

वे उसी रावण में आसक्ति रखते थे, जिसका मंगल सीताजी को स्पर्श करने के कारण पहले ही नष्ट हो चुका था । भरत जी केवल गो मूत्र में पकाया हुआ जौ का दलिया खाते थे, वल्कल पहनते और पृथ्वी पर सोते थे । नन्दिग्राम में भरत जी राम जी की चरण पादुका रखते थे । भगवान् को देखते ही भरतजी के हृदय में प्रेम की बाढ़ आ गयी, वे भगवान् के चरणों में गिर पड़े । भगवान् ने अपनी भुजाओं में भरकर बहुत देर तक भरत जी को हृदय से लगाये रखा । इसके बाद भरतजी ने पादुकायें लीं, विभीषण ने श्रेष्ठ चँवर, सुग्रीव ने पंखा और श्री हनुमान जी ने श्वेत छत्र लिया तथा वे लोग रामजी को राजसिंहासन की ओर ले गये । भगवान् ने अयोध्या पुरी में प्रवेश किया । राजमहल में उन्होंने अपनी माता कौशल्या तथा अन्य माताओं का सम्मान किया । इसके बाद वसिष्ठजी ने विधिपूर्वक भगवान् की जटा उतरवायी तथा समुद्र के जल से उनका अभिषेक किया । भगवान् श्रीराम पिता के समान प्रजा का पालन करने लगे । जब वे राजा बने तब था त्रेता युग किन्तु वह सतयुग बन गया । बिना इच्छा के राम जी के राज्य में किसी की मृत्यु नहीं होती थी । जब किसी की इच्छा होती तभी उसकी मृत्यु होती थी । **'एकपत्नीव्रतधरो'** – रामजी ने एक पत्नी का व्रत धारण किया था ।

'रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥'

रघुवंशियों का यह सहज स्वभाव था कि इस वंश के किसी भी व्यक्ति का मन कभी कुपंथ की ओर नहीं गया ।

'मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥'

रामजी ने कहा है कि यह अत्यधिक विश्वास की बात है कि स्वप्न में भी मेरा मन कभी परस्त्री की ओर नहीं गया । एक साथ दो बातें नहीं हो सकतीं । मनुष्य एकपत्नीव्रत हो जाए तभी वह भक्ति के, धर्म के मार्ग पर चल सकता है । स्त्री लम्पट बनकर भक्ति रस का आस्वादन नहीं किया जा सकता । सती शिरोमणि सीताजी प्रेम से, सेवा से, अत्यधिक विनय, लज्जा, बुद्धि आदि दिव्य गुणों से अपने पति भगवान् श्रीरामजी का मन हरती थीं । श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् श्रीराम ने कई यज्ञ किये । सारी पृथ्वी का उन्होंने ब्राह्मणों को दान कर दिया । अपने शरीर के वस्त्र और अलंकार ही अपने पास रखे तथा सीताजी के पास भी केवल सुहाग के चिह्न बचे, बाकी सब कुछ उन्होंने भी दान कर दिया । ब्राह्मणों ने देखा कि भगवान् श्रीराम तो ब्राह्मणों को ही अपना इष्टदेव मानते हैं तब उन्होंने प्रसन्न होकर सारी पृथ्वी भगवान् को ही लौटा दी और कहा कि इसका पालन आप ही कीजिये । एक बार अपनी प्रजा की स्थिति जानने के लिए श्रीरामजी रात के समय गुप्त रूप से घूम रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक धोबी की पत्नी रूठ कर चली गयी थी । रात को वह किसी दूसरे के घर रही । जब सुबह वह घर लौटकर आई तो धोबी उससे कह रहा था – 'तू मेरे घर में कैसे घुस आई ?'

'नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।' (श्रीभागवतजी - ९/११/९)

'तू दुष्ट स्त्री है, असती है, दूसरे के घर में रही है ।' **'स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ।'** 'मैं स्त्री लोभी राम की तरह नहीं हूँ, जो तुझे अपने घर में रखूँ ।' भगवान् राम ने यह बात सुनी । यह संसार कैसा है ? **'दुराराध्यादसंविदः'** – यह संसार दुराराध्य है । सब लोगों को प्रसन्न करना बड़ा कठिन है । विश्वनाथ चक्रवर्तीजी ने संसार के लोगों के बारे में लिखा है – 'ज्ञानशून्यात्' अर्थात् संसार में अधिकांश लोग ज्ञानशून्य यानी मूर्ख होते हैं । अंग्रेजी में एक कहावत है - majority consists of fools अर्थात् समाज में अधिकतर लोग मूर्ख होते हैं । मनोविज्ञान में कहा गया है कि साधारण जनता का स्तर निम्न होता है । श्रीधरस्वामी भी कहते हैं कि प्रायः लोग अज्ञ होते हैं । अस्तु, जब भगवान् श्रीराम ने बहुत से लोगों के मुख से अपनी निन्दा की बात सुनी तो वे लोक निन्दा से भयभीत हो गये तथा सीताजी का त्याग कर दिया । श्रीराम द्वारा अयोध्या से निष्कासित किये जाने पर सीताजी वन में वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में रहने लगीं; जानकीजी उस समय गर्भवती थीं । समय आने पर उनके एक ही साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे कुश और लव । अन्त में अपने पति श्रीरामजी द्वारा निर्वासित सीताजी अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि मुनि को सौंपकर श्रीरामजी के चरणों का ध्यान करती हुई विवर अर्थात् पाताल लोक में प्रवेश कर गयीं, संसार को शिक्षा देने के लिए कि स्त्री और पुरुष का प्रसंग इसी प्रकार दुःखद होता है ।

स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः । (श्रीभागवतजी - ९/११/१७)

इसके बाद भगवान् राम ने तेरह हजार वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया ।

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः । (श्रीभागवतजी - ९/११/१८)

श्रीरामजी का ब्रह्मचर्य अखण्ड रहा । **स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ।**

स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः ॥ (श्रीभागवतजी - ९/११/१९)

इसके अनन्तर अपने भक्तों के हृदय में अपने उन चरणकमलों को स्थापित कर, जो दण्डक वन के काँटों से बिंध गये थे, प्रभु श्रीराम अपने ज्योतिर्मय साकेत धाम को चले गये । उन्होंने देवताओं की प्रार्थना से यह लीला शरीर धारण किया था, उन्हें शत्रुओं को मारने के लिए बन्दरों की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं थी, यह सब केवल उनकी लीला है । उन प्रभु श्रीराम की मैं शरण ग्रहण करता हूँ । श्रीशुकदेवजी कहते हैं – जो मनुष्य अपने कानों से भगवान् श्रीराम का चरित्र सुनता है, उसे सरलता, कोमलता आदि गुणों की प्राप्ति होती है तथा वह समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है । राजा परीक्षित ने पूछा – भगवान् श्रीराम अपनी प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करते थे तथा उनकी प्रजा का समय कैसा बीता ? श्रीशुकदेव जी कहते हैं – प्रजा श्रीराम को देखकर बड़ी प्रसन्न रहती तथा अतृप्त नयनों से उन्हें देखा करती थी । श्रीरामजी प्रजा का पिता के समान पालन करते थे और उनकी प्रजा भी उन्हें पिता समझती थी ।

श्रीरामजन्म-महोत्सव

भारतीय सनातन संस्कृति के वैष्णव-पर्वों में 'श्रीरामनवमी' एक महापर्व है, जिसकी जन-जन में सुप्रसिद्धि सहज ही है, क्योंकि भगवान् श्रीराम के जीवन के आदर्शों की प्रायः सभी को आश्यकता है, इसलिए सभी लोग श्रीरामजी के आदर्शों का अनुसरण कर अपने मानवीय जीवन की रहनी को भक्तिमय बनाते हैं ।

मंगल-बधाई

सुत कौशिल्या ने जनम दियौ है, छाय रह्यौ आनन्द भारी ।
शुक्ल चैत्र नौमी तिथि आई,
दिवस मध्य में सब हरषाई,
अभिजित समय सबन मन भाई,
सीत न घाम देवता हरषें, बरस सुमन मंगलकारी ।
जड़-चेतन में हरष भयौ है,
मुनिजन मन में मुदित भए हैं,
मंगल के शुभ सगुन भए हैं,
बन्धु-पिता परिजन पुरवासी, धूम मची अति भारी ।
अवधपुरी फूली न समावै,
बजी बधाई सब जन गावैं,
नृप दशरथ खुशियाँ लुटवावैं,
मनचाही सब वस्तु मिले, जयकार लगै सुखकारी ।
लला राम के दर्शन पावैं,
किलकारी मन मोद बढ़ावै,
बालरूप देखत सुख पावैं,
राम लला की जय होवै, बोलें बोली सब न्यारी ।
बनी भूमिका भक्ति धर्म की,
मर्यादा में सीख प्रेम की,
लीला करी प्रेम पाने की,
लखन राम शत्रुघ्न भरत से, आवै सहज समझदारी ॥

परम स्नेह-वात्सल्यमयी 'बाबाश्री की दीदीजी'

प्रयागवासी श्रीबलदेव प्रसाद शुक्लजी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती हेमेश्वरी देवी को दीर्घ काल तक सन्तान सुख अप्राप्य रहा । शुक्ल दम्पत्ति शिवजी के अनन्य भक्त थे, इसलिए सन्तान प्राप्ति की इच्छा से उन्होंने कलकत्ता के निकट स्थित तारकेश्वर में जाकर महादेव जी की आराधना की । तारकेश्वर महादेवजी की कृपा से सन् १९३० पौष मास की सप्तमी तिथि को रात्रि ९:२७ बजे एक कन्यारत्न का जन्म हुआ । तारकेश्वर महादेव का कृपा प्रसाद होने के कारण कन्या का नाम तारकेश्वरी रखा गया, जिन्हें श्रीबाबा महाराज की बड़ी बहन होने का परम सौभाग्य मिला तथा जिन्हें श्रीबाबा दीदी कहकर पुकारते थे और वे दीदीजी के रूप में ही जानी जाती रहीं । परम पूज्या श्रीदीदीजी श्रीबाबा महाराज से आठ वर्ष बड़ी थीं । श्रीबाबा के पिताजी सन्तों का बड़ा ही सम्मान करते थे, उनके घर में प्रायः सन्त आते ही रहते थे । माताजी सन्तों के लिए भोजन बनाती थीं तो दीदी जी उनका सहयोग करती थीं । वे भी अपने पिताजी के साथ सन्तों की सेवा करती थीं । बचपन में दीदीजी के मन में आत्म तत्त्व के प्रति बड़ी ही गम्भीर जिज्ञासा थी । जो भी सन्त उनके घर में आते, वे बहुधा उनसे एक ही प्रश्न करती थीं कि मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ से आई हूँ और मेरा जन्म इस संसार में क्यों हुआ है ? उस समय उनकी अवस्था आठ-दस वर्ष ही थी । एक छोटी-सी बालिका के ऐसे प्रश्न सुनकर सन्तों ने श्रीबाबा के पिताजी से कह दिया था कि एक दिन आपकी पुत्री भी सांसारिक जीवन से विरक्त हो जाएगी ।

रामेश्वर महादेव की कृपा से आठ वर्ष बाद श्रीबाबा का जन्म हुआ तो वे सभी के लाड़ले बने रहे । दीदीजी श्रीबाबा से बहुत अधिक स्नेह करती थीं । वे अपने हाथों ही बाबा को खिलाती-पिलातीं, उनके शरीर की मालिश करती थीं । बाबा भी अपनी दीदी से बहुत प्रेम करते थे । यदि माताजी बचपन में दीदी को मार देतीं तो दीदी तो कम रोती थीं किन्तु बाबा अधिक रोते थे । जब दीदी बचपन में अपनी सहेलियों के साथ गुड्डा-गुड़िया से खेलतीं तो बाबा को भी अपने साथ खिलाती थीं । दीदी किसी मन्दिर में अथवा कहीं भजन-कीर्तन के कार्यक्रम में जातीं और जब वहाँ भगवान् का प्रसाद मिलता तो उसे स्वयं न खाकर अपने छोटे भाई के स्नेहवश उनके लिए प्रसाद लेकर घर आतीं । छोटे-से बाबा को माताजी सुला देती थीं, जब दीदी घर आतीं तो छोटे से बाबा भी दीदी के पाँवों की आहट सुनकर जग जाते और प्रसन्नता से प्रसाद पाने की आशा से 'दीदी-दीदी' कहने लगते । दीदी उन्हें भगवान् का प्रसाद खिलातीं तो बाबा बहुत ही हर्षित होते थे । दीदीजी अत्यन्त ही कुशाग्र बुद्धि की थीं, स्कूली शिक्षा में भी उन्होंने बहुत अध्ययन किया था । शास्त्रीय संगीत में भी उनकी रुचि थी । उन्होंने प्रयाग संगीत समिति से संगीत की भी शिक्षा प्राप्त की थी । उन्होंने ही श्रीबाबा को भी संगीत सिखाया था । श्रीबाबा भी अत्यन्त ही मेधावी थे । दीदी ने संगीत में उनकी रुचि जगाई और सर्वप्रथम उन्हें हारमोनियम बजाना सिखाया । थोड़ा ही सिखाने पर बाबा हारमोनियम बड़ी जल्दी सीख गये । अल्प आयु में ही बहुत ही शीघ्र दीदी के निर्देशन में श्रीबाबा बहुत अच्छे हारमोनियम वादक और गायक बन गये । संगीत में उनकी रुचि और कुशलता को देखकर आगे चलकर दीदीजी ने ही 'प्रयाग संगीत समिति' में श्रीबाबा को प्रवेश दिलाया और अपने संगीत के गुरुजनों से परिचय करवाकर उनके द्वारा श्रीबाबा को संगीत कला का प्रक्षिक्षण दिलवाया ।

जब दीदी का विवाह हो गया तो प्रयाग में ही उनकी ससुराल थी । दीदी को अपने छोटे भाई श्रीबाबा से इतना अधिक स्नेह था कि वे विवाह के बाद भी अपने ससुराल में रहते हुए दो-तीन महीने तक बाबा की याद में रोती रहती थीं । उनके पति प्रयाग में एक विद्यालय के प्रधानाचार्य थे । जब वे शाम को घर लौटते तो देखते कि रोते-रोते उनकी पत्नी की आँखें व मुँह लाल रहते और यह प्रतिदिन का ही क्रम था । दीदी के पति बहुत नाराज होते और उनसे कहते कि जब तुम्हें अपने भाई से इतना प्रेम था तो तुमने विवाह ही क्यों किया, अपने मायके में ही रहती । बाबा बहुत छोटे थे तथा पिताजी

की मृत्यु हो चुकी थी, घर में केवल माताजी ही श्रीबाबा की देखभाल करती थीं तो दीदी को यही चिन्ता रहती थी कि मेरे भाई का क्या होगा ? उसका पालन-पोषण कैसे होगा ? उसकी शिक्षा कैसे होगी ? बाबा के भविष्य के बारे में चिन्ता के ही कारण वे अपनी ससुराल में प्रतिदिन रोया करती थीं । दीदी के एक चाचा, जो दीदी के मायके वाले घर के बिल्कुल पड़ोस में ही रहते थे, उन्होंने दीदी के पति से कहा कि हमारा घर तो इनके घर के बगल में ही है और उसमें चार कमरे ऊपर तथा चार कमरे नीचे हैं । दो कमरों में ही हम रहते हैं । इतने बड़े घर में हमारे जो कमरे खाली हैं, उसमें आप लोग आकर रह लो । दीदी की स्थिति को देखकर उनके पति चाचा के घर में आकर रहने लगे । उनके घर वालों ने इसका बहुत विरोध किया और कहा कि तुम घर जमाई बनकर वहाँ रहोगे, तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा का कोई विचार नहीं है । दीदी के पति ने कहा कि अगर मेरी पत्नी अपने भाई के वियोग में कहीं रोते-रोते मृत्यु को प्राप्त हो गयी तो फिर क्या किया जाएगा ? इससे तो अच्छा है कि हम लोग चाचाजी के मकान में रह लेंगे, जिससे कि मेरी पत्नी अपने भाई से प्रतिदिन मिल लिया करेगी और उसका दुःख दूर हो जाएगा । जुलाई में दीदी का विवाह हुआ था और जनवरी में वे श्रीबाबा के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण अपने ससुराल वालों के प्रबल विरोध के बावजूद भी अपने पति के साथ अपने चाचा के मकान में आकर रहने लगीं । उनकी माताजी का मकान बिल्कुल बगल में ही था । इसलिए वे विवाह के पश्चात् भी माताजी के साथ ही श्रीबाबा के पालन-पोषण में सहयोग करने लगीं और उनकी स्कूली शिक्षा में भी पूरा ध्यान देने लगीं । दीदी के पति प्रयाग में 'सरयू पारीण कॉलेज' के प्रधानाचार्य थे तो वे श्रीबाबा को अपने ही स्कूल में प्रवेश दिलवाकर उनकी शिक्षा में पूरी तरह सहयोग करने लगे । बाबा ११ वें वर्ष के प्रारम्भ में कक्षा ९ की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये । दसवीं कक्षा में आयु के अनुसार परीक्षार्थी को कम से कम १३ वर्ष का होना चाहिए, जबकि इनकी आयु १३ वर्ष से कम थी, अतः इनको परीक्षा देने से रोक दिया गया । इस विद्यालय के प्रधानाचार्य दीदी के पति श्रीयमुनाप्रसादतिवारी ने कह दिया कि आयु का मसला गौण है, रमेश में योग्यता है, अतः इसको परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाए और इस तरह से बाबा को हाई स्कूल की परीक्षा में बैठने की अनुमति प्राप्त हुई और ये अच्छे नम्बरों से पास हुए ।

आगे चलकर जब श्रीबाबा के हृदय में श्रीकृष्णप्रेम और वैराग्य की भावनायें उत्पन्न होने लगीं तो दीदी और उनकी माताजी दोनों ही बहुत चिन्तित हो गयीं । कभी-कभी बाबा दीदी की ससुराल में भी जाया करते थे और वहाँ हारमोनियम पर बहुत अच्छा भजन गाकर सुनाया करते थे । भजन गाते-गाते बाबा इतना भावुक हो जाते (ब्रजभाव में डूबकर गाते) कि वहाँ उनका भजन सुनने वाले लोग भी भावविभोर होकर आश्चर्यचकित हो जाते । वहाँ की लड़कियाँ दीदी से कहा करतीं – भाभी ! ऐसा लगता है कि आपका भाई तो साधु हो गया है । वे रोते हुए कहती थीं कि इतना अच्छा लड़का हाथ से निकल गया है । ससुराल के लोगों के द्वारा बाबा के बारे में ऐसा कहने पर दीदी की चिन्ता बढ़ गयी । घर में रहते समय भी प्रायः 'बाबा' विरह के आवेश में भाग जाया करते थे । लोगों ने दीदी से कहा कि रमेश का विवाह कर दो तो उन्होंने भी सोचा कि कहीं मेरा भाई पूरी तरह से विरक्त न हो जाए, इसलिए उन्होंने उनका विवाह करने का निश्चय किया । एक ब्राह्मण ने दीदी से कहा कि मैं एक गरीब ब्राह्मण हूँ, मेरी एक विवाह योग्य कन्या है । हम पैसा, दान-दहेज़ नहीं दे सकते लेकिन आप मेरी बेटी को देख लीजिये । आपको पैसा तो कहीं भी मिल जाएगा परन्तु ऐसी लड़की नहीं मिलेगी । उस ब्राह्मण के कहने पर दीदी उसके घर लड़की देखने गयीं । वह वास्तव में बहुत सुन्दर थी और कक्षा आठ में पढ़ती थी । दीदी को वह लड़की पसंद आ गयी और उन्होंने उसके साथ अपने भाई (बाबा) का विवाह करने का निश्चय किया । दीदी ने घर आकर बाबा से कहा कि हम लोग तुम्हारे लिए एक लड़की देखकर आये हैं, वह बहुत सुन्दर है, एक बार तुम भी उसको देख लो । बाबा ने कहा कि मैं नहीं देखूँगा, ऐसी तमाम लड़कियाँ सड़कों पर घूमती रहती हैं ।

वस्तुतः ब्रजभाव में निमग्न बाबाश्री के हृदय-सिन्धु में श्रीराधामाधव का दिव्य प्रेम हिलोरें ले रहा था तो फिर उन्हें सांसारिक विवाह-बन्धन इत्यादि कैसे वश में कर सकते थे; श्रीबाबामहाराज तो ब्रजभूमि में आने के लिए तड़प रहे थे और ब्रज में आकर यहाँ की वास्तविक सेवा-आराधना करने से ही उन्हें सच्ची सन्तुष्टि मिली ।

श्रीदीदीजी के शब्दों में – मिट्ठूलाल शास्त्री नामक हमारे पिताजी के एक गुरु भाई थे, वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफ़ेसर थे । सबसे पहले वे बाबा से यहाँ मिलकर गये थे । उन्होंने ही बाबा के बारे में अम्मा को बताया, फिर अम्मा यहाँ आयीं । पहले बाबा कुछ समय के लिए साँकरीखोर पर भी रहे थे, उसके बाद फिर मानगढ़ आ गये थे । साँकरीखोर में बाबा एक छोटी-सी गुफा में रहा करते थे । वहाँ तो मैं अकेली आई और बाबा के पास रुकी । उस समय लाड़लीशरण भी इनके साथ थे । इसके बाद बाबा मानगढ़ के खण्डहर में आ गये । उस समय मान मन्दिर की दीवारों पर बड़ी-बड़ी दरारें थीं । पूरे मानमन्दिर में, जिसमें ठाकुरजी हैं, केवल वहाँ ही एक कोठरी थी और वह कोठरी भी बड़ी बेकार थी, रमेश कोठरी के बाहर बैठकर पूजा-आराधना करते थे क्योंकि उसमें जगह बहुत कम थी । बाकी सारा मन्दिर खण्डहर था, दीवारों पर बड़े-बड़े साँप लटके रहते थे, नीचे एक लाइब्रेरी (पुस्तकालय) थी, वर्षा होने पर वह चूती थी, इसके अतिरिक्त मानमन्दिर में कुछ नहीं था, फाटक आदि भी नहीं थे । गह्वरवन तो इतना घना था कि सूरज निकलने पर भी दिखायी नहीं देता था । हम जब यहाँ आये तब सखीशरणजी भी यहाँ रहते थे । गह्वरवन में किसी ने 'बाबा' के लिए एक कुटिया बनवा दी, उसने बाबा के लिए चार सौ रुपये भेज दिए, उसी से कुटिया बन गयी । पहले बाबा वहीं रहते थे, जब अम्मा आ गयीं तो बाबा ऊपर मानगढ़ चले गये । मानमंदिर, जो एक वीरान खण्डहर था, वह बहुत भयानक था । एक बार तो रात में बाबा के सोते समय उनके सिरहाने पर एक काला साँप बैठा हुआ था, जब कुछ भक्त बाबा के दर्शन के लिए आये तो वह सर्प धीरे से चला गया ।

जब हम पहली बार यहाँ बाबा से मिले तो उन्होंने हमको सिखाया – **शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोसि....** और कहा कि रोज सबेरे इसका पाठ किया करो । हमको इन्होंने एक कागज पर लिखकर ये संस्कृत प्रार्थना दे दी । मैं प्रयाग में रहते समय प्रतिदिन इसका पाठ करती थी ।

ओमी (पण्डितजी) को जब हमने देखा तो ये हाई स्कूल में थे । हमने इनको कोर्स का एक विषय भी पढ़ाया था । जो हमने उनको पढ़ाया, उनको अभी तक याद है, उनकी बुद्धि बहुत अच्छी है । बाबा ने हमसे कहा कि इसके कोर्स में यह विषय है, तुम इसको पढ़ा दो । हमने यहाँ पर १९९० से, रिटायरमेंट के बाद रहना स्थाई रूप से प्रारम्भ किया ।

हम पहले प्रयाग से यहाँ आया करते थे, उस समय सखीशरणजी यहीं रहते थे । वे मुझसे और मेरे बच्चों से बड़ा स्नेह करते थे । हमारी एक बेटी का नाम रुनझुन था, उसका यह नाम बाबा ने ही रखा था । ब्रह्मचारीजी भी मानमन्दिर में रहते थे । रक्षाबन्धन के दिन हम सखीशरणजी और ब्रह्मचारीजी को राखी बाँधा करते थे । हर साल रक्षाबन्धन के दिन सखीशरणजी मेरे पास राखी बँधवाने के लिए आया करते थे, उन्होंने कोई राखी नहीं छोड़ी । जब वृद्धावस्था के कारण चलने-फिरने में असमर्थ हो गये, तब भी धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़कर मेरे कमरे में राखी बँधवाने के लिए आया करते थे ।

सन् २०११ की गम्भीर बीमारी के बाद जब बाबा अस्पताल से मानमन्दिर पर आ गये थे, तब भी कुछ बाबा के विरोधी लोग उनके विरुद्ध तान्त्रिक अनुष्ठान किया करते थे । किसी ने देखा कि बाबा के कमरे के ऊपर अग्नि का गोला चक्कर लगा रहा था, तब कहा कि तुम्हारे बाबा के ऊपर प्रयोग किया गया है, वे डॉक्टर की दवाई से ठीक नहीं होंगे, ढेर सारे गुलाब के फूल ले आओ, उससे हम बाबा का स्वास्थ्य ठीक कर देंगे । उसको फिर गुलाब के फूल लाकर दिए गये तो उसने कुछ किया । हमने भी देखा कि गह्वरवन में एक साधु रात को कुण्ड के किनारे बैठता था और कोई अनुष्ठान करता रहता, चारों ओर तेल फैलाये रहता था । हमने कहा कि किसी सात्विक अनुष्ठान में इतना तेल प्रयोग नहीं किया जाता है, यह तो कोई तान्त्रिक लगता है । लोगों ने बताया कि उस तान्त्रिक को बाबा के विरुद्ध अनुष्ठान करने के लिए बैठाया गया था । बाबा को जब २०११ में हृदय पर आघात लगा तो हमें तो शंकरजी पर विश्वास है, जब हमें बताया गया कि आज रात को बाबा का ऑपरेशन शुरू होगा, उसी समय से हम तो अपने कमरे में उज्जैन के महाकाल 'शिवजी' की पूजा में बैठ गये, उनकी पूजा के लिए अखण्ड दीपक जला दिया, पूरी रात जागकर शिवजी से प्रार्थना की – 'हे नाथ !

यह दिया न बुझ जाए ।' देर रात तक बाबा का ऑपरेशन चला, फिर हमसे किसी ने कहा कि अब तो ऑपरेशन पूरा हो गया होगा, आप अब विश्राम कीजिये । हम तो शिवजी से यही प्रार्थना करते रहे – 'हे भगवान् ! यह दीपक न बुझे ।' जब बाबा ठीक होकर अस्पताल से मान मन्दिर आ गये तो फिर हमने उज्जैन जाकर महाकाल का अभिषेक किया । हमने शंकरजी से प्रार्थना की – 'आपने ही रमेश को पैदा किया, हम तो कोई पूजा की विधि, कोई मन्त्र-तन्त्र जानते नहीं, बस यही जानते हैं कि तुम्हीं ने इन्हें दिया है, अब तुम्हीं इनकी रक्षा करो । पिताजी का यह अकेला दीपक बुझने न पाये ।'

जब मेरे पति की मृत्यु हो गयी तो बाबा ने हमको एक बहुत बड़ा शिक्षाप्रद पत्र लिखा था, उसमें लिखा था – "दीदी ! प्रकृति-नटी की इस नाट्यशाला में हम सभी अभिनेता हैं । कोई अभिनय करके जा रहा है, कोई अभिनय करने के लिए आ रहा है; इसमें बहुत दुःखी नहीं होना चाहिए । इस संसार में प्रकृति का यही नियम है – आना और जाना । हम सब प्रकृति के हाथ के खिलौने हैं । तुम अपने आप को भगवान् को समर्पित कर दो, उसी जगत् नियन्ता की ओर अब देखो ।"

जब हम यहाँ आते थे तो बाबा के लिए अपने हाथ से भोजन बनाते थे और जब स्थायी रूप से रहने लगे तब तो बनाया ही करते थे क्योंकि पहली बार जब हम बाबा से मिलने यहाँ आये तो हमने देखा कि वे बाजरे की मोटी-मोटी सीमेंट जैसी रोटियाँ नमक-मिर्च के साथ खा रहे थे । हम कुछ बोले तो नहीं किन्तु यह देखकर बहुत दुःख लगा । हम अपने घर में कई सब्जियाँ बनाते थे किन्तु बाबा को रूखी रोटी खाते देखकर हमने घर में सब्जी खाना बंद कर दिया था । तभी से हमने मन में यह सोच लिया था कि जब हम गह्वरवन में रहेंगे तो बाबा को अपने हाथ से भोजन बनाकर खिलाया करेंगे, फिर जब हम यहाँ रहने लगे तो बाबा के लिए भोजन बनाने लगे । जब माताजी यहाँ रहती थीं तो वे भी बाबा के लिए अपने हाथ से भोजन बनाती थीं ।

कुछ साधुजन ऐसा भी बताते हैं कि बाबा जब पहले किसी छोटे-से कमरे में रहते थे तो उसे बन्द कर लेते थे । उस समय जो लोग वहाँ आसपास रहते थे तो उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे बाबा किसी से बात कर रहे हों । बुद्धदेव नामक एक साधु ने एकबार मुझे बताया कि बाबा रात में अकेले में किसी से बात करते रहते हैं, ऐसा लगता है कि वे राधारानी से बात करते हैं । हमने कहा कि ऐसे ही कुछ कहते रहते होंगे, राधारानी से क्या बात करेंगे ? किसी और संत ने भी एक बार बताया कि जब बाबा मानगढ़ की सीढ़ियों से कथा कहने के लिए नीचे गह्वरवन उतरते हैं तो उनके साथ राधारानी भी नीचे आती हैं, कुछ लोगों ने ऐसा देखा है, उन्हें राधारानी की साड़ी दिखायी देती थी, फिर गायब हो जाती थी, साड़ी थोड़ी-थोड़ी देर में दिखती थी, फिर गायब हो जाती थी । सखीशरणजी को इस बारे में अधिक मालूम था । जब ये लोग इस तरह की बातें किया करते थे तो हम सोचते थे कि लोग यूँ ही झूठे ही बक रहे हैं किन्तु इतना है कि हम भी जब अपना घर-परिवार छोड़कर यहाँ आये तो हमारा मन भी संसार की ओर से हटता गया, नहीं तो पहले हम अपने बेटा-बहू में बहुत अधिक आसक्त थे । यहाँ आने पर मेरी वह आसक्ति समाप्त हो गयी । अपने घर में हम लोग साईं बाबा को अधिक मानते थे । एकबार मेरी पुत्री का बेटा यहाँ आया । उसने अपने मन में सोचा कि हम लोग तो साईं बाबा को मानते हैं और हमारे नानाजी (बाबा) भी साधु हैं तो मैं किसको मानूँ ? वह जब यहाँ आया, उस समय बाबा की कथा चल रही थी । उसने देखा कि साईं बाबा 'रमेश' के शरीर से निकले और एकदम से उसको चिपका लिया । यह देखकर वह चौंक गया और हमसे आकर बोला – नानी ! आप किसी से बताइयेगा नहीं क्योंकि कोई विज्ञान का विद्यार्थी इस बात पर विश्वास नहीं करेगा, हमने आज ऐसा देखा । मैं सोचता था कि मैं तो 'साईं बाबा' को मानता हूँ, ऐसे में मैं 'नाना' को कैसे मानूँ तो मैंने कथा में देखा कि साईं बाबा 'नाना' के शरीर से निकले और आकर मेरे शरीर से चिपक गये, ऐसा देखकर मैं तो काँप गया । यह घटना बताकर वह रोने लगा । उसने बताया कि मुझे अपने जीवन में पहली बार ऐसा अनुभव हुआ । इसी प्रकार एकबार मेरे पुत्र का पुत्र मेरठ से यहाँ आया था तो अपने साथ बहुत बड़ा शीशा लेकर आया था; दिन में तीन-चार बजे के लगभग आया, फिर शाम को पाँच बजे गह्वरवन में बाबा की कथा होती थी । कथा में वह बाबा के

चरण स्पर्श करके कथा सुनने बैठ गया तो उस दिन बाबा ने कथा में शीशे के ऊपर ही सारा भाषण दिया । वह लड़का हमसे बोला – 'अम्मा ! मैं तो बाबा से मिला ही नहीं, सीधे जाकर उनकी कथा सुनने बैठ गया किन्तु बाबा को कैसे पता चला कि मैं अपने साथ बहुत बड़ा शीशा लेकर आया हूँ । आज तो बाबा ने शीशे पर ही सारा व्याख्यान दिया ।' ऐसी घटनाएँ प्रायः हुआ करती हैं । यहाँ भी कुटी में जो लड़कियाँ रहती हैं, वे भी कहती हैं कि जब कभी भी हम लोग किसी बात को अपने मन में सन्देहपूर्वक सोचते हैं तो बाबा प्रायः कथा में बिना कहे ही उसी प्रसंग पर 'सत्संग' देने लगते हैं ।

एकबार एक बंगाल की स्त्री 'ब्रजयात्रा' करने आई थी, उस समय यात्रा यहाँ से नन्दगाँव चली गयी थी । उस समय एक वकील साहब 'रसमन्दिर' से भोजन की गाड़ी यात्रा के पड़ाव स्थलों पर ले जाया करते थे । वह महिला उनसे मिली और यात्रा में ले जाने के लिए कहने लगी । उसने कहा कि यह बात किसी से बताना नहीं, मेरे गुरु हिमालय में रहते हैं, उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है और कहा है कि जाओ, 'ललिता सखी' का 'रमेश बाबा' के रूप में अवतार हुआ है, इस समय वे बरसाने में मानगढ़ में रहते हैं, उनकी ब्रजयात्रा चलती है, उनकी यात्रा में तुम 'रमेश बाबा' के साथ जितने भी पग चलोगी, उतने ही तुम्हारे कष्ट दूर हो जायेंगे । वह नन्दगाँव में 'बाबा' के दर्शन करने पहुँची तो बहुत रो रही थी, हमसे भी मिली थी किन्तु हमें यह बात उस समय उसने नहीं बताई थी । हम भी नहीं जानते थे कि यह क्यों रो रही है ? उसने मुझे बताया कि मैं यात्रा छोड़कर घर नहीं जाना चाहती किन्तु मेरे घर से फोन आया है, मेरी जवान लड़कियाँ हैं, उनकी देखभाल करनी है, इसलिए मुझे घर बुलाया गया है, मैं तो 'बाबा' को छोड़कर नहीं जाना चाहती हूँ । जब वह चली गयी, तब वकील साहब ने मुझसे बताया कि वह स्त्री ऐसा कह रही थी । उसके गुरु हिमालय में रहते थे । वह स्त्री बहुत कष्ट में थी तो उसके गुरु ने उससे कहा था कि तेरा कष्ट तब कटेगा, जब तू 'रमेश बाबा' के साथ उनकी यात्रा में जितने पग उनके साथ चलेगी; उनके चरणों की धूल तेरे शरीर पर पड़ेगी तो तेरा कष्ट दूर हो जाएगा ।

ब्रजभावभावित 'श्रीराधा बाबा'

<u>श्रीप्राणनाथ शर्मा (विश्वम्भरशरण पाठक) के शब्दों में</u> –

श्रीराधा बाबा प्रारम्भ में अद्वैत वेदान्ती थे, देहाध्यास छूट गया था, सांसारिक प्रपंच निशेष था, अद्वय-अखण्ड अनुभूति में परिनिष्ठित थे । सहसा परम वन्दनीय नित्य लीलालीन हनुमान प्रसाद जी पोद्दार के संस्पर्श से २६ अक्टूबर, १९३६ को उनका हृदय सच्चिन्मयी नीलिमा के प्रकाश से ज्योतिष्मान हो गया । ऐसा ही अवसर तो आया था 'अद्वैत सिद्धि' के परम विद्वान् लेखक श्रीमधुसूदन सरस्वती के जीवन में; वे शांकर मत के मूर्धन्य आचार्य थे, उनके ज्ञान की थाह केवल सरस्वती ही ले सकती थीं किन्तु एक क्षण ऐसा आया कि उनकी ज्ञान गुदड़ी प्रेम की धारा में बह गयी और वे सोच्छवास कह उठे – **अद्वैत वीथी पथिकैरुपास्याः साम्राज्य सिंहासन लब्धदीक्षाः ।**
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन ॥

परम पूजनीय भाईजी के सम्पर्क से जो सन् १९३६ में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ, उसने बाबा के मन में एक अमिट छाप छोड़ दी । आचार्य श्रीमधुसूदन सरस्वती के उपर्युक्त वचनों के समान ही बाबा ने कहा –

क्या से क्या कुछ दिन में ही था, जीवन का हाल हुआ प्रियतम । कैसे बह गयी ज्ञान गरिमा, इस नीली धारा में प्रियतम ॥

गोप-वधू-विटेन किस प्रकार हठेन अपना लेता है, इसका अनुभव बाबा को भी हुआ । करीब एक माह के पश्चात् वे ब्रह्म चिन्तन और प्रणव जप में तल्लीन थे कि तभी अकस्मात् भगवान् श्रीकृष्ण हाथ में वंशी धारण किये आकाश में खड़े हुए दिखाई दिए । बाबा के मन में तत्क्षण यह भाव आया कि यह माया जनित है.....श्रीकृष्ण का यह रूप मेरे सामने से हट

जाए और मैं ब्रह्म चिन्तन में लीन हो जाऊँ, पर न तो वह गगनस्थ मूर्ति बाबा के सामने से हटती थी और न बाबा ब्रह्म चिन्तन में लीन हो पाते थे । दो घंटे भरपूर प्रयास के बाद भी वह मूर्ति सामने विराजित रही । .... ज्यों ही बाबा ने साकार विग्रह को अपने सामने से हटाने का प्रयास विसर्जित किया, त्यों ही वह चिन्मय मूर्ति आकाश से नीचे उतरने लगी और बाबा की ओर बढ़ने लगी । .... फिर कदम्ब वृक्ष सहित वेणु वादन तत्पर भगवान् श्रीकृष्ण बाबा के वक्षःस्थल में प्रवेश कर गये.....वहाँ सदा के लिए प्रतिष्ठित हो गये । सच है 'हठेन' 'दासीकृता' 'गोप विधूटेन' । तत्पश्चात् बाबा के जीवन में दो धाराएँ चल पड़ीं – श्रीमद्भगवद्गीता से अनुप्राणित और दूसरी व्रज-रस से परिपूरित –

जो ज्ञान शुद्ध रसमयतक दो तोरण हैं बने हुए प्रियतम ।
है एक सारथि रथ चिह्नित, मुनि कीर एक पर है प्रियतम ॥
सन्धि स्थल पर मिलती सी हैं, दो सत्ता जहाँ अहो प्रियतम ।
इस दृश्य विश्व का इधर और उस ओर तूर्य रस का प्रियतम ॥

इस समय बाबा का जीवन इन दोनों धाराओं का संगम स्थल है – दोनों द्रुम से लिपटी झूली वह भावमयी वल्ली प्रियतम । वंशी विभूषित कृष्ण का साक्षात्कार तो हुआ, किन्तु उस समय गीता की तत्त्व विवेचनी टीका के लेखन में भी बाबा सहायता दे रहे थे । इसी प्रसंग में सन् १९३९ के अप्रैल मास के अन्तिम सप्ताह में किसी दिन एक अलौकिक घटना बाँकुड़ा में हो गयी । बाबा अपने उपासना कक्ष में भगवान् वंशीधर के चित्र पर ध्यान केन्द्रित कर रहे थे कि बाबा को दिखाई दिया कि श्रीविग्रह के दोनों अधर हिल रहे हैं । बाबा का ध्यान उन पर केन्द्रित हो गया और भगवान् उसी चित्रपट में प्रकट हो गये – **जो हो फिर परिच्छेद मधुमय आया जिसमें तुमने प्रियतम । माया भी रची चित्रपट के होठों की ओट लिए प्रियतम ॥**

बाबा के जीवन वृत्त के इस मधुमय परिच्छेद में भगवान् कृष्ण ने बाबा को बताया कि गीता का सर्व-गुह्यतम प्रतिपाद्य विषय है – सर्वभाव से भगवान् के प्रति आत्मसमर्पण । 'सर्व-धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' – ही सर्वगुह्यतम उपदेश है । इस नवीन दृष्टि को देकर भगवान् अन्तर्हित हो गये । इधर बाबा ने सर्वपरित्याग कर क्षेत्र सन्यास लेकर वृन्दावन वास का निश्चय किया । पूज्यवर श्रीसेठ जयदयाल गोयन्दका तथा परम वन्दनीय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार ने बाबा को इस विचार से विरत करने का प्रयास किया । पुनः बाबा अपने उपासना कक्ष में बैठे थे कि भगवान् फिर से चित्र से प्रकट हो गये । उन्होंने बताया कि भाईजी श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार का मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी भगवत्स्वरूप होकर भगवान् की लीलाभूमि में परिणत हो गया है, अतः उनके साथ निवास ही वृन्दावन-वास है । बाबा ने संकल्प लिया कि वे सचल वृन्दावन भाईजी के साथ रहकर ही अपने क्षेत्र सन्यास व्रत का पालन करेंगे ।

थी श्रमित हुई उड़ती उड़ती निस्सीम गगन तल में प्रियतम ।
मेरे ही साथ सदा तुम थे हँस हँसकर खेल रहे प्रियतम ॥
सहसा अवनी की ओर दृष्टि मेरी गड़ गयी तथा प्रियतम ।
देखा श्यामल सुन्दर पिंजर अब तो गति रुद्ध हुई प्रियतम ॥
ढल पड़ी निकट आकर, फेरी दो चार बार उसकी प्रियतम ।
दी, और अचानक यंत्रित सी घुस पड़ी भला उसमें प्रियतम ॥
हो गया द्वार बस रुद्ध और फँस गयी चंचला मैं प्रियतम ।

इस प्रकार बाबा के जीवन की दोला ज्ञान की मुक्त विहंगम आकाशचारी गति से हटकर भक्ति की ओर अग्रसर हुई ।

भक्ति की उद्दाम धारा बाबा के तन, मन, जीवन में प्रवाहित होने लगी । क्षेत्र-सन्यास का व्रत लेकर वे सदा के लिए भाईजी श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार से सम्बद्ध हो गये । उन्हें भाईजी में भगवत्स्वरूप परिलक्षित हुआ । "मानसिक आराधना करते समय जब मैं भगवान् कृष्ण के मस्तक पर पुष्प चढ़ाता था तो मेरे मानसिक नेत्रों को एक दूसरा दृश्य दिखाई देता था कि पुष्प भगवान् के मस्तक पर न चढ़कर पोद्दार महाराज के मस्तक पर चढ़ जाया करते हैं ।"

अर्चन करने मैं बैठी थी सम्मुख मेरे तुम थे प्रियतम ।
तुम पर थी फूल चढ़ाती पर पिंजर पर चढ़ जाता प्रियतम ॥
इस भाँति अनेक बार जब था दीखा, चकराई मैं प्रियतम ।
तुमने समझाया तभी मर्म इसका मैं समझ सकी प्रियतम ॥

फिर हरि-रसामृत-सिन्धु का ज्वार ही उमड़ पड़ा –

'प्रगट्यो ग्वालिनी नेह पूरन' पद का अन्तस्तल में प्रियतम । नयनों और अहंता में था राग लगा छिड़ने प्रियतम ॥'

"तुमने देखी होगी सर्प की छोड़ी हुई केंचुली । कैसे दीखती है ? सर्पिणी की आँखें, मुख, उसकी देह ज्यों की त्यों दीखती है उस केंचुली में । ऐसा लगता है, सचमुच वहाँ सर्पिणी है, सर्प है । किन्तु केंचुली में कहाँ सर्पिणी, कहाँ सर्प ? सर्पिणी, सर्प तो उस आवरण को छोड़कर चली गयी, चला गया । वैसे ही गोपी इस छाया में कहाँ ? कृष्ण-कुन्तल मण्डित गोपी की देह-छाया पड़ी है, उसमें आँख, कान, नासिका, मुख – सबके सब ज्यों के त्यों दीख रहे हैं, ऐसा लगता है मानो गोपी अभी भी यहीं हैं किन्तु गोपी तो इस छाया को छोड़कर कब की चली गयी ।"

ग्वालिनि प्रकट्यो पूरन नेहु । दधि भाजन सिर पै लिए कहत गुपालहिं लेहु ॥
प्रेम मगन ग्वालिनि भई सूरदास प्रभु संग । स्रवन नयन मुख नासिका ज्यों कंचुलि तजत भुजंग ॥

साधना फलीभूत हुई और विहगी तरुणी में परिणत हो गयी । पिंजरे का स्वरूप भी बदला । वह भी षोडश सुन्दरी बाला के रूप में परिणत हुआ ।

कविहगी से मैं थी रमणी में परिणत हो गयी अहो प्रियतम ।
क्षण एक अभी जो पहले था पिंजड़ा वह भी बदला प्रियतम ॥
षोडशी सुन्दर बाला थी अब वहाँ और मैं थी प्रियतम ।
उसके समीप, वह भी मेरी अलकें सज्जित करती प्रियतम ॥
अध्यस्त हो गयी मैं सहसा उस साधु कलेवर में प्रियतम ।

रहस्य कथा का विस्तार लम्बा है । इसमें अप्रतिम गहराई है । मानसी सेवा में संलग्न श्रीरूप मंजरी का साक्षात्कार और मंजु लीला – भाव की दीक्षा, प्रिया-प्रियतम के द्वारा मंजुश्यामाभाव की बाबा में प्रतिष्ठा, श्रीत्रिपुर सुन्दरी का साक्षात्कार और भगवान् के द्वारा बाबा में राधा महाभाव के स्थापना की कथा अनिर्वचनीय है । जड़िमा और दिव्योन्माद का अवतरण विलक्षण था । दिव्योन्माद, जो अधिरूढ़ महाभाव की मोहन स्थिति है, उसके दर्शन अनेक भाग्यवानों ने बाबा के जीवन में किये हैं । इस गेरुआ वस्त्रधारी सन्यासी की यह विचित्र गाथा है –

'कोई न चितेरा हुआ यहाँ, आगे न कभी होगा प्रियतम । जो चित्र महामहिमामय का बाबा का सही लिखे प्रियतम ॥'

सच है – **तीनों दुनिया से चीज न्यारी हूँ मैं, अब तक न खुल सकी वो गाँठ भारी हूँ मैं,**
जो है बेहदूद नूरे जिस्मे कृष्ण वह पीला दामन सरकारी हूँ मैं ।

भाई राधेश्याम बंका ने इस अलौकिक जीवन वृत्त का अवगाहन कर अपने को कृतकृत्य कर लिया । वे निश्चय ही 'भूरिद' (बड़े दानी) हैं – **श्रवण मंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ।**

जो श्रवण मात्र से ही परम मंगल को प्रदान करती है, ऐसी श्रीसम्पन्न कथा का संसार में जो प्रवचन-कीर्तन करते हैं, वे जगत् में सबसे बड़े दानी हैं ।

<u>परम भागवत सन्त हृदय भाईजी श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दारजी की अभिव्यक्ति</u> –

'बाबा' चक्रधरजी पूज्य श्रीजयदयाल जी (पूज्य सेठजी) की प्रेरणा से कृपापूर्वक यहाँ पधारे और अब तक मेरे साथ ही हैं । बाबा से मेरा जो कुछ सम्बन्ध है, उसे किन्हीं शब्दों में नहीं बतलाया जा सकता है । उन्होंने मेरी जो कुछ सेवा की है, वह अतुलनीय है । मेरे द्वारा किये गये अपमान तथा दुर्व्यवहार को जितना सहा है, उतना सहकर शायद ही

कोई अपने को सुस्थिर रख सके तथा प्रेम का निर्वाह कर सके । उनकी स्थिति क्या है, मैं नहीं बता सकता । इतना जानता हूँ कि वे महान हैं और सर्वथा मेरे अपने हैं और मुझे वे सर्वथा अपना मानते हैं । अद्वैत तत्त्व में स्वामीजी (बाबा) की निष्ठा होते हुए भी रस-तत्त्व में इनका प्रवेश हुआ और वह प्रवेश उत्तरोत्तर वर्धित होता चला गया । जो इनके अन्तरंग जीवन के सम्पर्क में आये हैं, उनको मालूम है कि महाभाव, जो एक अगले स्तर की चीज है, जिसकी रूपरेखा शायद जीव गोस्वामी तक ने भी नहीं खींची, वैसी चीज इनमें व्यक्त हुई । अवश्य ही साधना के क्षेत्र में यह एक बड़ी विलक्षण वस्तु है कि जहाँ रस-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी होकर एक साथ एक रूप में रहते हों ।

<u>पूज्य श्रीकृपाशंकरजीमहाराज के उर्मिल उद्गार</u> –

वीतराग तपोनिष्ठ अनन्त श्री समलंकृत पूज्य चरण श्रीराधा बाबा में स्थितप्रज्ञ सन्यासी के जितने लक्षण वेदोपनिषद् श्रीमद्भागवतादि पुराणों और श्रीरामचरितमानस आदि में वर्णित हैं, विद्यमान थे । ये लक्षण वाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार के होते हैं । बाह्य लक्षण वेषभूषा, शरीर की आकृति, बैठना, उठना, भोजन आदि का सात्विक होना आदि है । आभ्यन्तर लक्षण काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ और पाखण्ड आदि का अभाव होता है । ये समस्त लक्षण पूज्य चरण श्रीबाबा में विद्यमान थे । उन्होंने सन्यासी के बाह्य वेष का परित्याग कभी नहीं किया । गेरुआ रंग में रंगा हुआ वस्त्र उनके दिव्य श्रीअंग में सदा लिपटा रहता था । सन्यास धारण के पश्चात् उन्होंने कभी स्त्री जाति एवं द्रव्य का स्पर्श नहीं किया । पत्रावली में ही वे एक बार भिक्षा ग्रहण करते थे । ऐसे दिव्य आदर्श और नैष्ठिक सन्यासी के श्रीचरणों में मैं प्रणति निवेदन करता हूँ ।

पद्म पुराण में अत्यन्त महत्वपूर्ण निरूपण है – मंगलमय चन्दन तरु की तरह जो दूसरों के तापों का नाश करके उनको आह्लादित करते हैं, जो दूसरों का कार्य सम्पादन करने के लिए स्वयं प्रसन्नता पूर्वक पीड़ा का वरण कर लेते हैं, वे ही सुकृती हैं, सिद्ध सन्त हैं । वे पर पीड़ा निवृत्ति के लिए अपने प्राणों को भी तृण की भाँति न्यौछावर कर देते हैं । लोक-मंगल के लिए सर्वथा समुद्यत ऐसे सन्त ही वसुन्धरा को धारण करते हैं ।

परम श्रद्धेय श्रीराधा बाबा अपने भक्तजनों के समस्त क्लेशों को स्वयं अंगीकार कर लेते थे । भक्तों के कर्म जन्य क्लेशों को स्वयं भोग लिया करते थे । साथ ही उन प्राणियों को पावन भगवत्प्रेम भी प्रदान करते थे । सामान्य प्राणी महत्तर सन्तों की इस नैसर्गिक मनोवृत्ति को आपाततः नहीं समझ पाते हैं । ऐसे महान उपकारी जगत हितैषी लोक पावन पूज्य श्रीचरणों में मैं अपनी भावपूर्ण प्रणति निवेदन करता हूँ ।

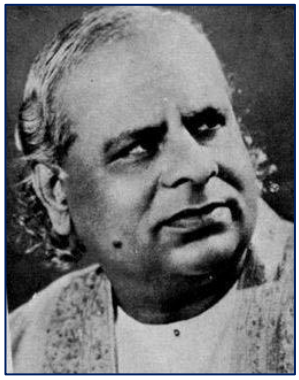

संगीत-पथ प्रदर्शक संत 'पं. ओंकारनाथ ठाकुर'

शास्त्रीय संगीतज्ञ पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर का जीवनकाल सन् १८९७ से सन् १९६७ तक रहा है । वे भारत के शिक्षा शास्त्री, संगीतज्ञ एवं हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीतकार थे, उनका सम्बन्ध ग्वालियर घराने से था । आपका जन्म २४ जून, सन् १८९७ को जहाज खम्बात, बड़ौदा (गुजरात) में बॉम्बे प्रेसीडेंसी में हुआ था । निधन २९ दिसम्बर, १९६७, उम्र ७० वर्ष, बम्बई (महाराष्ट्र) में हुआ था । विधायें – हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत, पेशा – संगीत शिक्षक, संगीत विद्, वाद्ययन्त्र – गायन, सक्रियता – सन् १९१८ से लेकर सन् १९६० के दशक तक । पण्डित ओंकार नाथ ठाकुरजी ने वाराणसी में महामना मदन मोहन मालवीयजी के आग्रह पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत के आचार्य पद की गरिमा में वृद्धि की । ये तत्काल संगीत परिदृश्य के सबसे आकर्षक व्यक्तित्त्व थे । पचास और साठ के दशक में पण्डितजी की महफ़िलों का जलवा पूरे देश के मंचों पर छाया रहा । पण्डित ओंकारनाथठाकुर की गायकी में रंजिकता का समावेश तो था ही, वे शास्त्र के अलावा भी अपनी गायकी में ऐसे रंग उड़ेलते थे कि एक सामान्य श्रोता भी उनकी कलाकारी का मुरीद (दीवाना) हो जाता था, उनका गाया हुआ 'वन्दे मातरम्' या 'मैया मोरि मैं नहीं माखन खायो' सुनने पर एक रूहानी (अलौकिक) अनुभूति होती है ।

परिचय – पण्डित ओंकारनाथजी का जन्म गुजरात के बड़ौदा राज्य में एक गरीब परिवार में हुआ था । उनके दादा महाशंकरजी और पिता गौरीशंकर जी तथा नाना साहब पेशवा की सेना के वीर योद्धा थे । एक बार उनके पिता का सम्पर्क अलौनी बाबा के नाम से विख्यात एक योगी से हुआ । इन महात्मा से दीक्षा लेने के बाद गौरी शंकर के परिवार की दिशा ही बदल गयी । वे प्रणव साधना अर्थात् ओंकार के ध्यान में रहने लगे । तभी २४ जून, १८९७ को इनकी चौथी सन्तान ने जन्म लिया । भक्त पिता ने अपने इस पुत्र का नाम ओंकारनाथ रखा । जन्म के कुछ ही समय बाद यह परिवार बड़ौदा राज्य के जहाज विराम से नर्मदा तट पर भड़ौच नामक स्थान पर आकर बस गया । ओंकारनाथजी का लालन-पालन और प्राथमिक शिक्षा यहीं सम्पन्न हुई । इनका बचपन अभावों में बीता । यहाँ तक कि किशोरावस्था में ओंकारनाथजी को अपने पिता और परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण के लिए एक मिल में नौकरी करनी पड़ी । ओंकारनाथ की आयु जब चौदह वर्ष की थी, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया । उनके जीवन में एक निर्णायक मोड़ तब आया जब भड़ौच के एक संगीत प्रेमी सेठ ने किशोर ओंकार नाथ की प्रतिभा को पहचाना और उनके बड़े भाई को बुलाकर संगीत शिक्षा के लिए बम्बई के विष्णु दिगम्बर संगीत महाविद्यालय में भेजने को कहा । पण्डित विष्णु दिगम्बर पुलस्कर के मार्गदर्शन में इनकी संगीत शिक्षा आरम्भ हुई । विष्णु दिगम्बर संगीत महाविद्यालय, मुम्बई में प्रवेश लेने के बाद ओंकारनाथजी ने वहाँ के पाँच वर्ष के पाठ्यक्रम को तीन वर्ष में ही पूरा कर लिया और इसके बाद गुरुजी के चरणों में बैठकर गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत संगीत की गहन शिक्षा अर्जित की । बीस वर्ष की आयु में ही वे इतने पारंगत हो गये कि उन्हें लाहौर के 'धर्म संगीत विद्यालय' का प्रधानाचार्य नियुक्त कर दिया गया । सन् १९३४ में उन्होंने मुम्बई में संगीत-निकेतन की स्थापना की । सन् १९४० में महामना मदनमोहनमालवीय उन्हें 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' के संगीत संघ के एक प्रमुख के रूप में बुलाना चाहते थे किन्तु अर्थाभाव के कारण न बुला सके । बाद में विश्वविद्यालय के एक दीक्षान्त समारोह में शामिल होने के लिए जब पण्डितजी आये तो उन्हें वहाँ का वातावरण इतना अच्छा लगा कि वे काशी में ही बस गये । सन् १९५० में उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गन्धर्व महाविद्यालय के प्रधानाचार्य का पदभार ग्रहण किया और सन् १९५७ में सेवानिवृत्त होने तक वहीं रहे । पण्डित ओंकारनाथठाकुर का जितना प्रभावशाली व्यक्तित्त्व था, उतना ही असरदार उनका संगीत भी था । एक बार महात्मा गाँधीजी ने उनके संगीत को सुनकर टिप्पणी की थी – 'पण्डितजी अपनी मात्र एक रचना से जनसमूह को इतना प्रभावित कर सकते हैं, जितना मैं अपने अनेक भाषणों से भी

नहीं कर सकता ।' उन्होंने (पण्डित ओंकारनाथठाकुर ने) एक बार सर जगदीशचन्द्र बसु की प्रयोगशाला में पेड़-पौधों पर संगीत के स्वरों के प्रभाव विषय पर अभिनव और सफल प्रयोग किया था । इसके अलावा १९३३ में जब वे इटली की यात्रा पर थे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि वहाँ के शासक मुसोलिनी को पिछले छः माह से नींद नहीं आई है; वे मुसोलिनी से मिले, ओंकारनाथजी के गायन से उसको तत्काल नींद आ गयी । उनके संगीत में ऐसा जादू था कि जनसामान्य से लेकर खास व्यक्ति भी सम्मोहित हुए बिना नहीं रह सकता था । आपके प्रति संगीत-प्रेमियों के भावोद्गार हैं – 'अब कहाँ सुनने को मिलता है भरा-पूरा मालकोंस । संगीत की एक महान विरासत छोड़ गये पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर ।'

पण्डित ओंकारनाथठाकुर ने वैदिक-वाङ्मय का अत्युत्तम ढंग से विश्लेषण करते हुए लिखा है कि संस्कृत वाङ्मय की यह एक बड़ी विशेषता है कि उसमें ज्ञान की सभी शाखाओं, सभी विद्याओं, सभी कलाओं और शास्त्रों का विवेचन इस ढंग से किया गया है कि उसमें कोई भी विषय भारतीय संस्कृति के मौलिक दृष्टिकोण से बिछुड़ नहीं पाया है । हमारे प्राचीन विद्वानों ने सब विद्याओं को एक ही केन्द्र की ओर उन्मुख रखा है, वह केन्द्र भला कौन सा है, जिसकी परिधि में पूरे ज्ञान भण्डार का समावेश हो सका है ? यह प्रश्न मानव के मूल उद्देश्यों के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को समझने के लिए बाध्य करता है । यदि एक शब्द में कहना चाहें तो यही कह सकते हैं कि 'आत्मानुभूति' ही वह केन्द्र बिन्दु है, जिसकी ओर सब विद्याओं को उन्मुख रखा गया है। इस मौलिक उद्देश्य के प्रति दृढ़ आस्था को संस्कृत वाङ्मय के दर्शन तथा व्याकरण अपने में समेटे हुए हैं। हमारे प्राचीन मनीषियों का जीवन के प्रति समग्र दृष्टिकोण था, खण्डित चेतना को उन्होंने कहीं भी स्थान नहीं दिया। इसीलिए जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित ज्ञान शाखाओं को एक ही मूल के साथ सम्बद्ध रखा जा सका है । जब सभी विद्याओं की यही स्थिति रही है, तब भला लौकिक संगीत केवल लोक रंजन की वस्तु कैसे रह सकता है ? इसीलिए उसे भी गान्धर्व वेद के रूप में प्रतिष्ठा दी गयी है ।

वैदिक संस्कृति में भक्ति और संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । इस युग में पग-पग पर भक्ति और संगीत का समन्वय दिखाई देता है। वैदिक संस्कृति में संगीत का भक्ति के लिए अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। भक्ति के आनुषंगिक कार्य – कर्मकाण्ड, उपासना तथा ज्ञान-विज्ञान आदि के निर्वाह में भी संगीत का ही सर्वाधिक आश्रय लिया जाता रहा है । इस युग में संगीत की सबसे बड़ी विशेषता उसकी पवित्रता और आध्यात्मिकता ही रही है। वैदिक दर्शन का तो सिद्धान्त ही यही है कि देश, जाति, वर्ग, व्यक्ति आदि सभी के अन्तःप्राणों में वही एक दिव्य सत्ता अवस्थित है। आर्यों ने इन सभी रूपों में अपने अभ्युत्थान के लिए उस परम सत्ता की उपासना को सदैव अपने दृष्टिकोण में रखा। उनका विश्वास था कि प्राणीमात्र के हित-चिन्तन में ही हमारा आत्म-चिन्तन और उस आत्म-चिन्तन में ही ब्रह्म-चिन्तन निहित है, जिसके लिए साकार भावनात्मक दृष्टि से उन्होंने अपनी भक्ति की भूमिका स्थिर की और उसी के आधार स्तरों में संगीत कला गूँज रही है ।

श्रीधाम की आराधना

श्रीबाबामहाराज के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि' (३१/१२/१९९९) से संकलित

जहाँ के पशु-पक्षी दिन-रात 'राधा' नाम का गान करते हैं, राधा-यश गाते हैं, ऐसा जो यह पञ्च योजनात्मक वृन्दावन है, गिरिराज, नन्दगाँव, बरसाना है, यह राधाविहारविपिन है, इस राधा-विहार-विपिन में हमारा मन रमे । इसीलिए श्रीजी को वृन्दावनाधीश्वरी कहा जाता है । (श्रीराधासुधानिधि श्लोक – १३)

प्रीतिरेव मूर्तिमती रससिन्धोः सारसम्पदिव विमला ।
वैदग्धीनां हृदयं काचन वृन्दावनाधिकारिणी जयति ॥ (श्रीराधासुधानिधि – १९९)

मूर्तिमती प्रीतिस्वरूपा, रस समुद्र की सार सम्पत्ति एवं चतुरशिरोमणि सखियों की हृदयरूपा कोई श्रीवृन्दावन की अधिकारिणी विजय को प्राप्त हो रही हैं । रसिकों ने कहा है कि श्रीजी वृन्दावन की अधिकारिणी हैं । श्रीपाद जीव

गोस्वामीजी द्वारा रचित 'माधव स्तव'में तो पौर्णमासीजी घोषणा करती हैं कि वृन्दावन का राज्य राधारानी को दिया गया है । इसीलिए रसिक लोग कहते हैं – प्रीतिरेव मूर्तिमती – साक्षात् जो मूर्तिमती प्रेम है, वही श्रीराधिका हैं । रससिन्धोः सारसम्पदिव विमला – समुद्र को मथा गया तो उससे अमृत निकला था परन्तु वह समुद्र प्राकृत था । जो भगवान् का स्वरूप है, चिदानन्द रस है, सच्चिदानन्दमय है, जो उनका स्वरूप है, उसको जब मथा गया तो उसकी जो सार सम्पत्ति निकली, वह थी श्रीराधिका रानी । वैदग्धीनां हृदयं – वे ही समस्त विदग्ध नायिकाओं की हृदय हैं, प्राण हैं । कौन हैं वे ? काचन वृन्दावनाधिकारिणी जयति – वे ही वृन्दावन की अधिकारिणी हैं ।

वृन्दावनेश्वरि तवैव पदारविन्दं प्रेमामृतैक मकरन्द रसौघपूर्णम् ।
हृद्यर्पितं मधुपतेः स्मरतापमुग्रं निर्वापयत् परमशीतल माश्रयामि ॥ (श्रीराधासुधानिधि – १२)

श्रीजी को वृन्दावनेश्वरी क्यों कहा गया ? जो मधुपति श्रीकृष्ण हैं, दिव्य प्रेम के भोक्ता मधुकर श्यामसुन्दर नन्दलाल हैं, हृद्यर्पितं – उनके भी अन्तःकरण में जो प्रेम का ताप है, वह ताप तभी दूर होता है, जब वृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानी के चरणकमल को वे अपने हृदय कमल पर धारण करते हैं । क्यों धारण करते हैं ? प्रेमामृतैक मकरन्द रसौघपूर्णम् – श्रीजी के चरण, प्रेम अमृत मकरन्द रस के एकमात्र स्थान हैं, इसलिए उनके चरणों को पीत अरविन्द कहा गया है, जिसको श्यामसुन्दर अपने हृदय पर धारण करते हैं और उनका ताप दूर हो जाता है । इसीलिए उनके चरणों को कमल कहा जाता है । **'मिलिन्द भक्त वृन्द हेतु राजती सुचारुता ।'** जितने भी रसिक हैं, वे भँवरे हैं । श्रीराधिकारानी के चरणकमलों से जो रस निकलता है अथवा इस श्लोक के अनुसार श्यामसुन्दर भँवरा हैं, उनके लिए श्रीजी के चरण कमल हैं । कमल में पराग होता है, कान्ति होती है, सुगन्ध होती है । राधारानी के श्रीचरणों से निरन्तर कान्ति, सुगन्धि निकलती रहती है । **'पराग पुञ्ज कान्ति वास तोष की सुपद्मता ॥'** श्रीजी के चरण सुन्दर पीत रंग के पद्म (कमल) हैं, उनमें सुगन्धि है, पराग है । उस कमल में अनन्त रस है, वह विचित्र है । कमल तो पानी में होता है किन्तु वह कमल वृन्दावन की भूमि पर चलता है, ऐसा विचित्र कमल है । **'अनन्तता विचित्रता प्रफुल्लता निहार रे ।'** कमल दिन में खिलता है किन्तु किशोरीजी के चरणकमल सदा खिले रहते हैं, रात में भी, दिन में भी । **'किशोरी राधिका जू के पदारविन्द वन्दि रे ॥'** उनके चरणों की वन्दना करो, वे अद्भुत कमल हैं । इसीलिए उनको वृन्दावनेश्वरी कहा गया है । **'वैदग्धीनां हृदयं काचन वृन्दावनाधिकारिणी जयति ।'**– वे इस वृन्दावन की अधीश्वरी हैं । इसीलिए 'राधा विहार विपिने रमतां मनो मे' – सुधानिधि के श्लोक – १३ में यह शब्द कहा गया है। वृन्दावन में तो श्यामसुन्दर भी हैं किन्तु उनके अनेक रूप हैं, वे मथुरा भी जाते हैं, द्वारका भी जाते हैं । श्यामसुन्दर तो मथुराधीश भी हैं, द्वारकाधीश भी हैं । वे सब कुछ हैं किन्तु श्रीजी तो एकमात्र वृन्दावन में हैं, इसलिए वृन्दावन की अधिकारिणी वे ही बोली जाती हैं ।

वृन्दारण्यनिकुञ्जसीमसु सदा स्वानङ्गरङ्गोत्सवैर्-माद्यन्त्यद्भुतमाधवाधरसुधामाध्वीकसंस्वादनैः ।
गोविन्दप्रियवर्गदुर्गमसखीवृन्दैरनालक्षिता दास्यं दास्यति मे कदा नु कृपया वृन्दावनाधीश्वरी ॥ (श्रीराधासुधानिधि – १२८)

वृन्दारण्य की सीमा में ही वे रहती हैं, वहीं उनका विस्तार होता है, इसलिए वे वृन्दावनाधिकारिणी कही जाती हैं । वृन्दावन के निकुञ्ज प्रदेश में अपने प्रेम विलासोत्सवों से भरी हुई माधव के अद्भुत अधरामृत के आस्वादन से जो उन्मत्त रहती हैं, श्रीगोविन्द के प्रियजनों को भी जो केलि दुर्लभ है, सखी समुदाय भी जिसे नहीं देख सकता है, ऐसी वृन्दावनाधीश्वरी मुझे कब अमृत भरा दास्य देंगी ? श्रीजी को यहाँ वृन्दावनाधीश्वरी क्यों कहा गया है, उसका कारण बताते हैं । वृन्दावन से मतलब केवल पाँच कोस का वृन्दावन नहीं है, पाँच योजन का वृन्दावन है । बरसाना, नन्दगाँव, गोवर्धन – ये सब वृन्दावन में हैं । इन्हीं में श्रीजी की लीलाओं का विशेष विस्तार होता है । इसीलिए वे वृन्दावनाधीश्वरी कही जाती हैं । वृन्दारण्य निकुञ्ज सीमसु – जो गौर समुद्र निकुंज की सीमाओं में रहता है, जबकि वह है अनन्त । सीमसु में बहुवचन लगा दिया, नन्दगाँव, बरसाना, गिरिराजजी – ये सभी स्थल सीमसु अर्थात् सीमाओं में हैं । इन सीमाओं में वे क्या करती हैं ? सदा स्वानङ्गरङ्गोत्सवैर् – श्रीजी के गौर अंग से रंगोत्सव प्रकट होते रहते हैं । उनका लीलामय वपु है,

रसमय वपु है । इसलिए उससे रंगोत्सव प्रकट होते रहते हैं । वृन्दावन की वे अधीश्वरी देवी क्या खाती हैं, क्या पीती हैं ? हर देवी का विशेष भोजन होता है, विशेष वस्त्र होता है । हर देवी-देवता की एक अलग पहचान होती है । जैसे श्रीकृष्ण पीताम्बर पहनते हैं, माखन खाते हैं, माखन उनका प्रिय भोजन है । महादेवजी की उपासना करो तो उनको आक-धतूरा प्रिय है, वही उनको चढ़ाना पड़ता है । उनका अलग वेष है, पहचान है । वृन्दावनाधीश्वरी श्रीराधारानी क्या खाती हैं, क्या पीती हैं ? कैसा उनका वेष विन्यास है, पहचान है ? सुधानिधिकार इसका उत्तर देते हैं कि माखन आदि तो ठाकुरजी खाते हैं किन्तु श्रीजी की पहचान है – 'माद्यन्त्यद्भुतमाधवाधरसुधामाध्वीकसंस्वादनैः' ये प्रेममयी देवी हैं, ये रसराज श्रीकृष्ण के अधर सुधा की मधु मदिरा को ही पीती हैं, यही इनका भोजन है और उसके सम्यक् आस्वादन में मत्त रहती हैं, यही इनका परिचय है । उस मधु पर एकमात्र श्रीराधारानी का अधिकार है, जो मधु (प्रेमरस) ब्रजरजरानी की कृपा से ही मिलता है, इसके लिए ब्रज व ब्रजवासीजनों में साक्षात् श्रीराधामाधव का ही भाव रखो – **'वृन्दावन में मंजुल मरिबो । जीवनमुक्त सबै ब्रजवासी पद रज सों हित करिबो ॥'** यह भावना रखनी पड़ेगी कि सभी ब्रजवासी जीवन्मुक्त हैं । ब्रजवासियों में चारों प्रकार के सभी जीव आ गये । यदि उनके प्रति ऐसी भावना नहीं करोगे तो तुम्हारी उपासना सिद्ध नहीं होगी । **'श्रीराधे रानी मोहि अपनी कर लीजै । और कछु मोहि भावत नाहीं, श्रीराधेरानी वृन्दावन रज दीजै ॥** श्रीराधारानी अपनी तब करेंगी, जब – **'खग मृग पशु पंछी या बन के, चरण शरण रख लीजै । ब्यास स्वामिनी की छबि निरखत, महल टहलनी कीजै ॥'** जब तक नाम और नामी में अन्तर समझोगे तब तक कितनी ही माला जप लो, कुछ नहीं होगा । इसी प्रकार धाम और धामी में अन्तर समझोगे तो उपासना सिद्ध नहीं होगी । उपासक बनना कठिन है । इस बात को समझ लो कि विरक्त बनने, बाबाजी बनने से बहुत आगे है उपासक बनना । भगवान् राम कहते हैं – **'सब मम प्रिय सब मम उपजाए ।'** यह सारी सृष्टि, पशु-पक्षी आदि समस्त जीव मेरे द्वारा ही रचित हैं और मेरे ही हैं किन्तु **'सब ते अधिक मनुज मोहि भाए ॥'** सबसे अधिक मुझे मनुष्य प्रिय हैं किन्तु इनमें अन्तर है । सृष्टि के सभी जीवों में अन्तर है, मनुष्यों में अन्तर है । इस अन्तर को भगवान् कह रहे हैं, चाहे हम लोग समझें अथवा न समझें । **'तिन महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी ।'** भगवान् कहते हैं कि मनुष्यों में भी मुझे ब्राह्मण प्रिय हैं । ब्राह्मण भी बहुत से होते हैं किन्तु उनमें जो श्रुतिधारी हैं, वेदज्ञ हैं, वे श्रेष्ठ हैं । वे मुझे अधिक प्यारे हैं । **'तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी ।'** केवल पढ़ने वाले पण्डित मुझे प्रिय नहीं हैं, जो वेद के अनुसार कार्य करने वाले, चलने वाले हैं, वे मुझे अधिक प्यारे हैं ।**'तिन मँह प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी ।'** जो सच में विरक्त हो गया है, जिसने सभी विषयों को छोड़ दिया है, वह मुझे अधिक प्रिय है । लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है । बहुत से लोग विरक्त हो जाते हैं किन्तु उनमें उचित ज्ञान नहीं होता है । विरक्तों में भी, जिनको ज्ञान हो जाता है, वे अधिक प्रिय हैं । इसके आगे है – **'ग्यानिहु ते पुनि प्रिय बिग्यानी ॥'** ज्ञानी से अधिक श्रेष्ठ है विज्ञानी । विज्ञानी उसको कहते हैं, जिसे क्रियात्मक ज्ञान हो गया है । क्या इतना पर्याप्त है तो बोले नहीं-नहीं, अभी तो बहुत आगे की बात बाकी है । **'तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा ।'** भगवान् कहते हैं कि जो हमारा दास है, वह चाहे विरक्त है, चाहे बाबाजी है, ज्ञानी है चाहे विज्ञानी है, उन सबसे बहुत आगे है । दास की क्या पहचान है ? दास की पहचान न तो लाल कपड़ा है, न पीला कपड़ा है, न जटाधारी है, न लटाधारी है, न उसकी कोई जाति-पाँति है । दास की एक ही पहचान है – **जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥** (श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – ८६)

यह दास की पहचान है कि जो भगवान् को छोड़कर किसी दूसरे से किसी प्रकार की आशा नहीं करता है । यदि हम दास बनकर किसी सेठ के पीछे दौड़ते हैं तो दास कहाँ रहे ? यदि उसकी जरा भी कहीं दूसरी जगह आशा है तो वह दास तो नहीं है । वह दास हो ही नहीं सकता । दास का कर्त्तव्य है कि अन्य जितने भी आश्रय हैं, उनको छोड़ दे । नारद भक्ति सूत्र में नारदजी ने कहा है – **'अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता'** – भगवान् को छोड़कर अन्य समस्त आश्रयों के त्याग को अनन्यता कहते हैं । कोई कितना भी ऊँचा बन जाए, कोई बहुत बड़ा विद्वान् है, बहुत ऊँचा भाषण करता है, कोई बहुत विरक्त है, उसने वस्त्र का भी त्याग कर दिया है, त्यागीजी बन गया, महात्यागी बन गया है, इन सबसे कोई मतलब नहीं

है । दास की एक ही पहचान है कि उसे भगवान् को छोड़कर किसी अन्य का भरोसा नहीं है । 'जेहि गति मोरि, न दूसरि आसा ।' हरिरामव्यासजी लिखते हैं – **'व्यास आस सागर में डूबे, आई भक्ति बिसारी ।'** साधु बनकर लोग नाम रख लेते हैं गोपालदास, श्यामदास, राधिकादास, रामदास किन्तु ऐसा नाम रखने से कोई दास नहीं हो जाता है । व्यासजी कहते हैं कि आशा के समुद्र में तुम डूब गये तो आई हुई भक्ति भी चली जाती है । ऐसी स्थिति में तुम दास कहाँ रहे ? महावाणीकार कहते हैं – **'जो कोऊ हरि के आश्रय आवे । सो अन्याश्रय सब छिटकावे ॥'** अन्याश्रय को जो छोड़ देता है, वही सच्चा रसिक है, अन्यथा वह रसिक नहीं है । ऐसा जो दास होता है, वही भगवान् को प्रिय होता है । अन्य आश्रयों को छोड़ने वाला ही श्रीराधिकारानी का अनन्य दास बनता है । नन्ददासजी कहते हैं – **'श्रीवृषभानु सुता पद अम्बुज, जिनके सदा सहाय ।'** वृषभानुसुता की प्रीति के लिए ही धाम निष्ठा है क्योंकि धाम और धामी अलग-अलग नहीं है । जब तक धाम और धामी को अलग मानोगे, तुम्हारी उपासना सिद्ध नहीं होगी । **'भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ।'** प्रतिक्षण वे भक्त अपने स्वामी के यश को, उनकी लीलाओं को कहते-सुनते रहते हैं, बस यही भक्तों का शील होता है । वे उत्कण्ठा के साथ भगवान् का यश कहते हैं । भगवत्प्रेम के कारण उनकी आँखों से आँसू बहते रहते हैं, शरीर में रोमांच होता रहता है । इस तरह यह धाम में रहने की शैली है । धाम में इस शील के साथ रहना चाहिए । इस शील के साथ रहने से निश्चय ही जीव भगवान् के नित्य धाम में पहुँचता है, जहाँ माया का प्रवेश नहीं है । जिस भगवान् के धाम में रज-तम से मिश्रित सत्त्व नहीं है, जिस भगवान् के धाम में काल का कोई भी पराक्रम, कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है । वहाँ माया का प्रवेश नहीं है फिर उसके बच्चे राग-द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि तो कहाँ से पहुँचेंगे ? जिस धाम में केवल भगवान् के पार्षद रहते हैं, भगवान् के भक्त रहते हैं । भक्त का शील क्या है ? भक्त का शील है – **'अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतं आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुच्यते ।'** अन्य कोई इच्छा भक्त के हृदय में नहीं घुसती है । ज्ञान, कर्म आदि के आवरण भी नहीं रहते हैं, क्योंकि उसके हृदय में विशुद्ध भक्ति चमचमाती रहती है । यही भक्त का शील है । ऐसा शील लेकर धाम में रहना चाहिए और ऐसा ही होना पड़ेगा तभी कुछ प्राप्ति होगी । ऐसा ही होना पड़ेगा । जब धाम महाराज ऐसा बना देंगे तभी धाम का सच्चा रूप मिलता है ।

श्रीधामवास का स्वरूप

राधासुधानिधि में कहा गया है कि वृन्दावन का प्रभाव जानना है तो **'यद् राधापदकिङ्करीकृतहृदां सम्यग्भवेद् गोचरम् ।'** जब राधारानी की शरणागति होगी तब यह धाम अच्छी प्रकार से दिखाई देगा । किसी भी धाम में जाओ, यही शर्त है, उसके पहले कुछ नहीं होगा । अयोध्या चले जाओ, इसके बिना वहाँ भी कुछ नहीं होगा ।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी । जब उर बसहिं राम धनुपानी ॥

जब तुम्हारे हृदय में धामी आकर बसेगा । धामी और धाम अलग नहीं हैं, यह याद रखो । इस दुनिया में ऐसा होता है कि हम अलग हैं और हमारा घर अलग होता है । कोई आदमी बाहर जाता है तो अपना घर उठाकर नहीं ले जाता है । घर तो जहाँ भी है, उसे छोड़कर जाना पड़ता है । किसी का घर दिल्ली में है तो जब वह ब्रज में आता है तो अपना घर वहीं छोड़कर आता है लेकिन धाम में ऐसा नहीं है । यहाँ तो धाम और धामी एक ही हैं । जब हृदय में धामी आएगा तो धाम भी आ जाएगा और जब धाम हृदय में आएगा तो धामी भी आ जाएगा । इसलिए धाम में जब गये हो तो वहाँ हर समय धामी को साथ रखो । धाम में रहने का यही एकमात्र रास्ता है । यही एकमात्र उपाय है, जिसे सीखना पड़ता है । धाम में जाकर धामी को मत छोड़ो । सदा उसकी याद करते रहो, तब धाम का स्वरूप खिलेगा, नहीं तो कुछ हाथ नहीं लगेगा । **'यद् राधापदकिङ्करीकृतहृदां सम्यग्भवेद् गोचरं ध्येयं नैव कदापि यद् धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः ।**

यत् प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि तद् वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु ॥' (रा.सु.नि. २६५) धाम की आश्चर्यमयी महिमा तभी आएगी जब तुम्हारा हृदय धामेश्वरी श्रीराधारानी के किंकरी भाव में डूब जायेगा । उसके

बिना तुम्हारे हृदय में धाम का विकास नहीं होगा । ऐसा रसिकों ने कहा है । धाम में रहने की यही एकमात्र शैली है । श्रीहित हरिवंश महाप्रभु जी कहते हैं – **सबसों हित निष्काम मति वृन्दावन विश्राम ।**

राधावल्लभ लाल को हृदय ध्यान मुख नाम ॥

धाम में गये हो तो वहाँ सभी प्राणियों से हित (प्रेम) रखो, हृदय में अपने इष्ट राधावल्लभलाल का ध्यान रहे तथा मुख से सदा उनका नाम लेते रहो । इसके अतिरिक्त वहाँ कोई और दूसरा काम मत करना । दूसरे पापड़ मत बेलना । तब फिर बहुत जल्दी धाम की स्फूर्ति होगी । ऐसा सभी रसिकों ने कहा है । उन्होंने कहा कि यह वही धाम है, इसको मिट्टी का धाम मत समझना । स्वामी हरिदासजी कहते हैं –

मन लगाय प्रीति कीजै कर करवा सों, ब्रज वीथिन दीजै सोहनी ।
गो-गो सुतन सों मृगी-मृग सुतन सों, और तन नेक न जोहिनी ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जबिहारी, सों चित ज्यों सिर पर दोहिनी ॥

स्वामी हरिदासजी कहते हैं - धाम की जो कुञ्ज गलियाँ हैं, उनकी भाव से सेवा करो । कुञ्ज गलियों में बुहारी लगाओ । किसी भी रसिक की वाणी में अन्तर मत समझो । वल्लभ सम्प्रदाय में छीत स्वामीजी कहते हैं –

'अहो विधना तोपै अचर पसारि माँगौ, जनमु-जनमु दीजै याही ब्रज बसिबौ ।'

हे विधाता ! तुमसे आँचर पसारकर मैं यही वर माँगता हूँ कि मुझे प्रत्येक जन्म में इसी ब्रज में जन्म दो । यह वही ब्रज है; इसमें और नित्य धाम के ब्रज में अन्तर नहीं है । महावाणी प्रसिद्ध रस ग्रन्थ है । महावाणीकार भी कहते हैं – **'यही है यही है भूलि भरमो न कोउ, भूलि भरमे ते भव भटक मरिहौ ।'** यह वही ब्रजभूमि है, यही वह धाम है । यही वे कुंजें हैं, जहाँ आज भी राधारानी बैठी हुई हैं । इस भाव से यहाँ आओ । इसमें भ्रम करोगे तो भवाटवी में भटककर मरोगे । यही वह जगह है, जहाँ नित्य विहार होता है । **'लाड़ली लाल के नित्य सुखसार बिन, कौन विधि वार ते पार परिहौ ॥'** कैसे भवसागर के पार जाओगे ? धाम-धामी को पकड़ो । धाम के अनन्य बन जाओ । **'एक अनन्य की टेक उर में धरौ, परिहरौ भर्म ज्यों फूल फरिहौ ।'** सब शंकायें छोड़ दो और धाम-धामी को पकड़ लो । यह वही स्थल, वही धाम है, जो तुमको राधारानी और श्रीकृष्ण के नित्य विहार, नित्य परम पद में पहुँचा देगा । धाम और धामी दोनों एक ही हैं ।

'श्रीहरिप्रिया के परम पद पास ही, आसु अनिवास ही वास करिहौ ॥'

इसी धाम में श्रद्धा के साथ वास करने से बहुत जल्दी श्यामा-श्याम की प्राप्ति हो जायेगी । श्रीराधासुधानिधिकार भी कहते हैं – **अहो तेऽमी कुञ्जास्तदनुपमरासस्थलमिदं गिरिद्रोणी सैव स्फुरति रतिरङ्गे प्रणयिनी ।**
न वीक्षे श्रीराधां हर हर कुतोपीति शतधा विदीर्येत प्राणेश्वरि मम कदा हन्त हृदयम् ॥ (श्रीराधासुधानिधि - २०९)

ये वही कुंजें हैं, यह वही रासमण्डल है । ये वही पर्वत की घाटियाँ हैं । परन्तु हाय-हाय बहुत बड़ा खेद है कि श्रीराधा के दर्शन नहीं हो रहे हैं । हे प्राणेश्वरी ! इस कष्ट से मेरा हृदय सैकड़ों टुकड़ों में फट क्यों नहीं जाता ? ऐसी उत्कण्ठा नहीं है, अपने अन्दर ऐसी उत्कण्ठा लाओ ।

इहैवाभूत् कुञ्जे नवरतिकलामोहनतनोर् - अहो अत्रानृत्यद् दयितसहिता सा रसनिधिः ।
इति स्मारं स्मारं तव चरितपीयूषलहरीम् - कदा स्यां श्रीराधे चकित इह वृन्दावन भुवि ॥ (रा. सु. नि. - २१०)

ये वही कुंजें हैं, जहाँ श्रीजी की रति कला हुई थी । यहीं वे अपने कान्त श्यामसुन्दर के साथ नाची थीं । इस प्रकार आपके चरितामृत की लहरों का बार-बार स्मरण करता हुआ इस वृन्दावन धाम की भूमि में मैं कब चकित होकर रहूँगा ? इस तरह से धाम में रहो । धाम में रहते समय प्रमाद, जिसको खुले शब्दों में आवारागर्दी कहते हैं, वह नहीं होना चाहिए । प्रमाद नहीं करो, प्रमाद करने से उत्कण्ठा कभी नहीं जागेगी । उत्कण्ठा को जगाना है तो उसका एक ही उपाय है कि अनवरत् रूप से भगवान् के गुणों, लीलाओं और उनके नाम का स्मरण किया जाए । धाम की कुञ्जों में जाओ और गाओ –

'मन तो मेरा चुरा लिया है राधा के रसिया श्याम ने ।' ब्रज की गलियों में पुकारूँ 'आजा मेरे सामने' यमुना किनारे जाओ तो वहाँ केवल यही भाव आना चाहिए । 'यमुना तट पर मैं खड़ी नीले जल से टेरूँ' एक गोपी यमुना किनारे खड़ी है और यमुना के नीले जल से बात कर रही है, यह पागलों का प्रलाप है । 'लहरों से उठकर ओ रसिया आ जा मेरे सामने । 'गलियों गलियों में पुकारूँ आ जा मेरे सामने । 'वन उपवन में मैं खड़ी लता पता में टेरूँ', कुञ्जों में से बाहर आ जा, आ जा मेरे सामने ।' गोवर्धन की परिक्रमा लोग करते हैं तो फ़ालतू बात करते हैं, उससे क्या लाभ है ? वहाँ जाओ तो दर्द (टीस) से भरी ऐसी टेर लगाओ, जो प्रभु को हिला दे और तुम्हारे सामने ला दे । 'गिरि गोवर्धन में खड़ी ठौर-ठौर पे टेरूँ' 'शिला शिला से रूप धरे तू आ जा मेरे सामने ।' पुराणों से लेकर रसिकों ने धामवास करने की यही शैली बताई है । इसी शैली से धाम में वास करना चाहिए ।

श्रीराधिका की कृष्णाराधना

श्रीगह्वरवनकुञ्जमन्दिरगता योगीन्द्रवद् यत्पदज्योतिर्ध्यानपरा सदा जपति यं प्रेमाश्रुपूर्णा सुश्रीः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः सः कृष्णेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरः ॥ (बाबाश्री विरचित)

जिस (कृष्ण नाम) का स्वयं राधिका भी योगीन्द्रों के समान कृष्णचरण-ज्योति में ध्यान लगाकर भरे हुए नेत्र एवं गद्गद वाणी से श्रीगह्वरवन के कुञ्जमंदिर में जप-आराधन करती हैं, वही अवर्णनीय विलासमय रति-रसानन्द से मोहित दो अक्षरों की पराविद्या मेरे हृदय में सदा स्फुरित रहें ।

श्रीकृष्ण की राधा-आराधना

कालिन्दीतटकुञ्जमन्दिरगतो योगीन्द्रवद् यत्पदज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरा ॥ (श्रीराधासुधानिधि – ९५)

जिस (राधा नाम) का स्वयं श्रीकृष्ण भी योगीन्द्रों के समान राधाचरणज्योति में ध्यान लगाकर, भरे हुए नेत्र एवं गद्गद वाणी से यमुना तट पर विद्यमान कुञ्जों के मंदिर में जपाराधन किया करते हैं, वही अवर्णनीय विलासमय रति-रसानन्द से मोहित, (आराध्या) दो अक्षरों की पराविद्या (राधा) मेरे हृदय में सदा स्फुरित रहें ।

श्रीब्रजप्रेम-प्रदायिका 'यमुनाजी'

एक बार अयोध्या के सूर्यवंशी राजा मान्धाता वृन्दावन में यमुनाजी के तट पर स्थित सौभरि ऋषि के आश्रम पर गये । उन्होंने ऋषि से प्रार्थना करते हुए कहा कि मुझे कोई ऐसा उत्तम साधन बताइए, जिससे इस लोक में सम्पूर्ण सिद्धियों से सम्पन्न मेरा राज्य बना रहे और परलोक में श्रीकृष्ण का सारूप्य अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण के नित्य धाम (गोलोक) की प्राप्ति हो । उस समय सौभरि ऋषि ने कहा कि मैं तुम्हारे सामने यमुनाजी के पञ्चाङ्ग का वर्णन करूँगा, जो सदा समस्त सिद्धियों को देने वाला है । यह साधन जहाँ से सूर्य का उदय होता है और जहाँ वह अस्त भाव को प्राप्त होता है, वहाँ तक के राज्य की प्राप्ति कराने वाला तथा भगवान् श्रीकृष्ण को वश में करने वाला है । यदुवंशियों के आचार्य एवं भगवान् श्रीकृष्ण का नामकरण संस्कार करने वाले श्रीगर्गमुनि द्वारा रचित ग्रन्थ गर्ग संहिता के माधुर्य खण्ड में सौभरि ऋषि ने राजा मान्धाता को अध्याय १६ से अध्याय १९ तक यमुना पञ्चाङ्ग के अन्तर्गत श्रीयमुना कवच, श्री यमुनाजी का स्तोत्र, यमुनाजी के जप, पटल और पद्धति का वर्णन तथा यमुना सहस्रनाम का विस्तार से वर्णन किया है । श्रीयमुना कवच का उपदेश करते हुए सौभरि मुनि ने कहा – **'यमुनायाश्च कवचं सर्वरक्षाकरं नृणाम् । चतुष्पदार्थदं साक्षाच्छृणु राजन् महामते ॥'** यमुनाजी का कवच मनुष्यों की सब प्रकार से रक्षा करने वाला तथा साक्षात् चारों पदार्थों को देने वाला है, तुम इसे सुनो । कवच का उपदेश करके फिर इसकी फलश्रुति में सौभरि मुनि ने कहा – **इदं श्रीयमुनायाश्च कवचं परमाद्भुतम् । दशवारं पठेद् भक्त्या निर्धनो धनवान् भवेत् ॥ त्रिभिर्मासैः पठेद् धीमान् ब्रह्मचारी मिताशनः । सर्वराज्याधिपत्यत्वं प्राप्यते नात्र संशयः ॥** यह श्रीयमुनाजी

का परम अद्भुत कवच है । जो भक्तिभाव से दस बार इसका पाठ करता है, वह निर्धन भी धनवान हो जाता है । जो बुद्धिमान मनुष्य ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक परिमित आहार का सेवन करते हुए तीन मास तक इसका पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण राज्यों का आधिपत्य प्राप्त कर लेगा, इसमें संशय नहीं है । जो तीन महीने की अवधि तक प्रतिदिन भक्तिभाव से शुद्धचित्त हो इसका एक सौ दस बार पाठ करेगा, उसको क्या-क्या नहीं मिल जाएगा ? इसी प्रकार यमुनाजी के सहस्त्रनाम का वर्णन कीर्ति देने वाला तथा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है । यह बड़े-बड़े पापों को हर लेता, पुण्य देता और आयु को बढ़ाने वाला श्रेष्ठ साधन है । रात में एक बार इसका पाठ कर ले तो चोरों से भय नहीं रहता, रास्ते में दो बार पढ़ ले तो डाकू, लुटेरों - हत्यारों से कोई भय नहीं रह जाता है । इसके पाठ से चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) की कामनायें पूरी होती हैं । क्षत्रिय अर्थात् शासक वर्ग पृथ्वी का आधिपत्य प्राप्त करता है तथा वैश्य या व्यापारी वर्ग खजाने का मालिक होता है । सबके अन्त में सौभरि ऋषि ने कहा कि जो लोग एक वर्ष तक पटल और पद्धति की विधि का पालन करके प्रतिदिन यमुना सहस्त्रनाम का सौ बार पाठ करते हैं और उसके बाद यमुना स्तोत्र एवं यमुना कवच पढ़ते हैं, वे सातों द्वीपों से युक्त पृथ्वी का राज्य प्राप्त कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है । जो यमुनाजी में भक्तिभाव रखकर निष्काम भाव से इसका पाठ करता है, वह पुण्यात्मा धर्म-अर्थ-काम तीनों को पाकर इस जीवन में ही जीवन्मुक्त हो जाता है । द्वितीया से पूर्णिमा तिथि तक प्रतिदिन कालिन्दी देवी (यमुनाजी) का ध्यान करके भक्तिभाव से दस बार यमुना सहस्त्रनाम का पाठ करने वाला यदि रोगी है तो रोग से छूट जाता है, कैद में पड़ा हो तो वहाँ के बन्धन से मुक्त हो जाता है, गर्भिणी नारी हो तो वह पुत्र पैदा करती है और विद्यार्थी हो तो वह पण्डित (श्रेष्ठ विद्वान्) होता है । मोहन, स्तम्भन, वशीकरण, उच्चाटन, मारण, शोषण, दीपन, उन्मादन, तापन, निधि दर्शन आदि जो-जो वस्तु मनुष्य मन में चाहता है, उस-उसको वह प्राप्त कर लेता है । श्रीवाराहपुराण में साक्षात् वराह भगवान् ने पृथ्वी देवी से कहा है – **गंगा शतगुणा प्रोक्ता माथुरे मम मण्डले । यमुना विश्रुता देवी नात्र कार्या विचारिणा ॥** (वाराहपुराण १५०/३०) यमुनाजी की महिमा गंगाजी से सैकड़ों गुना अधिक है । इस सन्दर्भ में किसी प्रकार का विचार अर्थात् सन्देह नहीं करना चाहिए । गंगाजी का प्रादुर्भाव तो श्रीकृष्ण के चरणकमलों से हुआ परन्तु यमुनाजी तो श्रीकृष्ण के वामांग से उत्पन्न हुई हैं; कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों से अतीत, मायातीत भगवान् के नित्यधामों में भी सर्वोत्कृष्ट धाम है गोलोक, वहाँ से यमुनाजी ही गंगाजी को पृथ्वी पर लायी हैं । स्वयं गंगाजी ने यमुनाजी की प्रशंसा करते हुए उन्हें अपने से अधिक महिमशालिनी बताया है । इसका विस्तृत प्रमाण "यमुनाजी का गोलोक से अवतरण" नामक गर्ग संहिता के श्रीवृन्दावन खण्ड के अध्याय तीन में उपलब्ध है । मानव समाज की सर्वविध समृद्धि के लिए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश रूप प्रकृति का शुद्ध व संरक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है । वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीताजी ने अपने पातिव्रत की रक्षा के लिए श्री यमुना का पूजन किया और यमुना की स्तुति करते हुए कहा – 'हे यमुने ! इक्ष्वाकु की पवित्र नगरी अयोध्या में चौदह वर्ष के वनवास के पश्चात् मेरे स्वामी श्रीराम यदि सुरक्षित लौट आयेंगे तो मैं सहस्त्रों गायों व सुरा (देव दुर्लभ पेय) से आपकी पूजा करूँगी ।' **कालिन्दी मध्यमायाता सीतात्वेनामवन्दत्-स्वस्ति देवि तरामि त्वं पारयन्मे पातिव्रतम् । यक्ष्ये त्वां गो सहस्त्रेण सुराघटशतेन च स्वस्ति प्रत्यागते राम पुरीभिक्ष्वाकु पालिताम् ॥** (वाल्मीकि रामायण) यमुना पूजन से श्रीराम की वनवास यात्रा को अत्यन्त सफल देखकर सीताजी ने पुनः श्रीवृन्दावन के निकट अशोक वन में आकर श्रीयमुना पूजन किया, जिससे श्रीराम एक सफल राज्य संचालक हुए एवं "राम राज्य" की प्रशस्ति चहुँ ओर फ़ैल गयी । श्रीमद्भागवत के अनुसार – **तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः । ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥** (श्रीभागवतजी १०/२२/३७) श्रीयमुना का जल अत्यन्त मधुर, शीतल, निर्मल (रोगों को दूर करने वाला) औषधीय गुणों से युक्त था, जिसे गायों को पिलाकर ही कृष्ण स्वयं पीते थे । पद्मपुराण के तृतीय स्वर्ग खण्ड में अध्याय – २९ में नारदजी श्रीयमुनाजी के स्नान व सेवन का महत्त्व बताते हैं दुर्गति

का अभाव, स्वर्ग, आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, यौवन, नरक में न जाना, दरिद्र न होना, पाप दूर होना, दुर्भाग्य दूर होना, दुःख दूर होना, धन प्राप्ति, स्त्री प्राप्ति । ये सब यमुना स्नान सेवन से मिलता है ।

गौपालन से ही सुख-समृद्धि

'गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं परम् ।' श्रीमद्भागवत में कहा गया है

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः । तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ (श्रीभागवतजी २/३/१०)

उदार बुद्धि वाला पुरुष निष्काम हो या समस्त भोगों का इच्छुक अथवा वह मोक्ष की ही अभिलाषा रखने वाला क्यों न हो, उसे तीव्र भक्तियोग के द्वारा केवल परम पुरुष भगवान् श्रीहरि की आराधना करनी चाहिए । यही बात गायों के लिए भी कही जा सकती है । 'स्वार्थ या परमार्थ' – कोई भी ऐसी वस्तु नहीं, जो गोमाता की कृपा से सुलभ न हो सके । संसार में कौन ऐसा विवेकशील प्राणी होगा, जो भगवान् को पाने के लिए लालायित न हो । युग-युग से, जन्म-जन्मान्तरों से जीव अपने बिछुड़े हुए प्रियतम परमात्मा से मिलने के लिए न जाने कहाँ-कहाँ भटकता है, कितने ही साधन करता है किन्तु अब तक बहुतों को सफलता नहीं मिली । साधन का ठीक-ठीक ज्ञान न होने से लक्ष्य की प्राप्ति में विलम्ब होना स्वाभाविक ही है । भगवत्प्राप्ति के अनेक साधनों में से 'गौ की सेवा' एक ऐसा अनुपम साधन है, जिससे भगवान् शीघ्र ही सुलभ हो जाते हैं । भगवान् हमारे इष्टदेव हैं परन्तु ये गौएँ उनकी भी इष्टदेवी हैं, वे इन्हीं की सेवा के लिए 'गोपाल' बनकर इस भूतल पर अवतरित होते हैं । भगवान् भी जिनके सेवक हैं, उनकी सेवा से भगवत्प्राप्ति में क्या संदेह हो सकता है ? जैसे गंगाजी के तट पर रहकर भी कोई प्यासा मरे और पानी के लिए दर-दर भटकता फिरे, वही दशा हमारी है । हम घर में कामधेनु के होते हुए भी उसकी सेवा से मुँह मोड़कर स्वार्थ और परमार्थ दोनों से वंचित रह जाते हैं ।

गोमाता किस प्रकार हमें भगवान् के निकट पहुँचाती है, यह थोड़ा-सा विचार करने पर ही सबकी समझ में आ सकता है । उदाहरण के लिए किसी भी गाय को देखिये, वह दो प्रकार की सन्तानों को जन्म देती है – बछड़ा और बछिया । पहले बछड़े की उपयोगिता पर विचार कीजिये । बछड़ा हृष्ट-पुष्ट होने पर एक अच्छा साँड़ या उत्तम बैल बन सकता है । साँड़ से दो लाभ होंगे – एक तो धर्मशास्त्रीय विधि के अनुसार वृषोत्सर्ग करने से वह हमारे पितरों का उद्धार करेगा और दूसरे उससे गोवंश की वृद्धि होगी । पितरों का उद्धार और गोवंश की वृद्धि – ये दोनों ही पुण्यकार्य हैं, अतः इनसे धर्म का सम्पादन होगा । यदि बछड़े को बैल बना लिया जाए तो उससे भी अनेक लाभ हो सकते हैं । एक तो वह वाहन के काम आता है, छकड़ों और बैलगाड़ियों को खींचता है तथा पीठ पर भी बोझ ढोता है । इससे अन्न आदि वस्तुओं के व्यापार में सहायता पहुँचेगी । व्यापार से सम्पत्ति बढ़ेगी और उससे लोक में सुख मिलेगा । इस प्रकार आनुषङ्गिक रूप से 'अर्थ' और 'काम' की भी सिद्धि होती रहेगी । सम्पत्ति होने पर हम वैदिक विधान के अनुसार यज्ञ कर सकते हैं तथा देश, काल और पात्र के अनुसार यथेष्ट दान करने में भी समर्थ हो सकते हैं । यज्ञ और दान भी धर्म के ही अंग हैं । यह बैल के द्वारा प्राप्त होने वाले एक लाभ की शाखा हुई । अब दूसरे लाभ को देखिये – उत्तम बैल से अच्छी खेती हो सकती है । खेती से पर्याप्त अन्न की प्राप्ति होगी । फिर अन्न से भी कई प्रकार के लाभ हो सकते हैं – एक तो उससे हमारा जीवन-निर्वाह होगा, हम स्वस्थ और सबल बनेंगे । स्वास्थ्य ठीक रहने पर मनुष्य उत्तम पुत्र उत्पन्न कर सकता है, जो श्राद्ध और तर्पण करके पितरों का उद्धार करे और इस प्रकार धर्म के आचरण में सहयोग करे । अन्न से दूसरा लाभ यह है कि हम स्वयं भी उसके द्वारा श्राद्ध करेंगे । उस श्राद्ध से पितरों का उद्धार होने के साथ ही हमें भी धर्म की प्राप्ति होगी । तीसरा लाभ यह है कि अन्न के व्यापार से प्रचुर धनराशि का अर्जन किया जा सकता है । वह धन लौकिक सुख का साधन तो बनेगा ही, यज्ञ एवं दान में लगाये जाने पर धर्मवृद्धि का भी कारण हो सकता है । इस प्रकार यहाँ गाय की एक सन्तान केवल बछड़े द्वारा होने वाले लाभों का विश्लेषण किया गया । गाय की दूसरी सन्तान है बछिया । उसका समुचित रूप से पालन करने पर

आगे चलकर वह भी एक अच्छी गाय बन सकती है । गाय से दो प्रकार के लाभ होते हैं – लौकिक और पारलौकिक । पारलौकिक लाभ होता है गाय के दान से । शास्त्रोक्त रीति से गौ का दान करके मनुष्य भवबन्धन रूपी अत्यन्त भयंकर वैतरणी नदी को सहज ही पार कर सकते हैं । यदि दूसरों के लिए गोदान किया गया तो वे भी जन्म-मृत्यु की वैतरणी से पार तो होंगे ही, उनके उद्धार रूप पुण्य कर्म से हम भी धर्म के भागी हो सकते हैं । लौकिक लाभ भी आगे चलकर पारलौकिक लाभ में परिणत हो जाता है । गाय घर पर रहेगी तो हमारे लिए दूध देगी - यह लौकिक लाभ है । उस दूध का दो प्रकार से उपयोग हो सकता है – एक तो दही जमाकर या दूध से ही घी बना लिया जाए अथवा दूध के द्वारा ही नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ – दुग्धान्न तैयार कराये जाएँ । घी और दुग्धान्न दोनों ही मानव-जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी वस्तुयें हैं । घी परम पवित्र एवं सात्विक वस्तु है । इसके सेवन से शरीर और मन दोनों शुद्ध होंगे । फिर शुद्ध विचार से सदाचार की वृद्धि होगी और सदाचार से अन्तःकरण की पवित्रता के साथ ही साथ आयु की भी वृद्धि होगी । इस तरह के शुद्ध, सात्विक एवं सदाचारपूर्ण जीवन में सदा अधिकाधिक धर्म का सम्पादन होता रहेगा । घी के द्वारा यज्ञ करके भी हम धर्म का आचरण कर सकते हैं । तीसरा लाभ है व्यापार । घी का व्यापार करके सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होगी, उससे फिर यज्ञ और दान होंगे तथा उन दोनों से पूर्ववत् धर्म की वृद्धि होती रहेगी । घी की ही भाँति दुग्धान्न से भी व्यापार, धनोपार्जन, यज्ञ, दान और धर्म प्राप्ति की परम्परा सुस्थिर रह सकती है । वह श्राद्ध में भी उपयोगी है । श्राद्ध से पितरों का उद्धार और उससे धर्म का सम्पादन भी होगा ही । दुग्धान्न का दान भी धर्म के एक अंग की पुष्टि कर सकता है । जीवन-निर्वाह में भी दुग्धान्न का बहुत बड़ा उपयोग है । स्वास्थ्य सम्पादन तो उसकी ख़ास विशेषता है ही, स्वस्थ शरीर से योग्य सन्तान का उत्पादन और उसके द्वारा पितरों के उद्धार रूपी धर्म का पालन भी अवश्यम्भावी है । इस तरह गाय अनेक शाखाओं तथा परम्पराओं से हमें अर्थ और काम की प्राप्ति कराने के साथ ही धर्म के सम्पादन में भी अत्यधिक सहायता पहुँचाती है । निष्काम धर्म के प्रभाव से मनुष्य में भगवच्छरणागति की योग्यता आती है । **'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥'** गीता के इस उपदेश के अनुसार अपने समस्त धर्म-कर्म भगवान् को भेंट करके स्वयं भी उनके चरणों में समर्पित हो जाता है । पूर्ण रूप से शरणागत हो जाने पर भक्त को भगवान् की प्राप्ति में तनिक भी विलम्ब नहीं होता । इस प्रकार गोमाता सम्पूर्ण जगत के मानवों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से श्रीभगवान् के निकट पहुँचने में सहायता करती रहती है । गौ के समान मनुष्यमात्र की सच्ची हितकारिणी दूसरी कोई नहीं है, अतः हम सब लोगों को तन, मन, धन से गोमाता की सेवा और रक्षा में तत्पर रहना चाहिए । यहाँ तक कि गोसेवा से यमयातना तक छूट जाती है, इसकी एक प्रत्यक्ष घटना है – एक मनुष्य ने जीवन भर पाप ही पाप किये थे । एक दिन उसने रास्ते में जाते समय देखा कि एक घायल गाय पड़ी है और उसके शरीर में सड़ा घाव है, दुर्गन्ध आ रही है तथा कीड़े भी पड़ गये हैं, उस मनुष्य को गाय पर दया आ गयी । उसने अपनी एक अँगुली से गाय के शरीर से कीड़े निकाले और उसी अँगुली से वह प्रतिदिन घाव पर मलहम लगाने लगा; धीरे-धीरे घाव मिट गया, दुर्गन्ध जाती रही । गाय स्वस्थ होकर चलने-फिरने लगी । मरने के बाद उस मनुष्य को यमपुरी में ले जाया गया । वहाँ वह अपने दुष्कर्मों का स्मरण करके दुःखी हो रहा था और भूख-प्यास से पीड़ित था । यमराज ने पता लगाया तो उसके जीवन में केवल पाप ही पाप थे । केवल एक ही सत्कर्म था – उसने एक बार अँगुली से गाय के शरीर से कीड़े निकाले थे और उसके घाव पर दवा लगायी थी । यमराज ने सन्तुष्ट होकर उस मनुष्य को अपनी अँगुली चूसने को कहा । आदेश पाते ही उसने मुँह की अँगुली को चूसना प्रारम्भ किया । गोसेवा के प्रताप से उसकी अँगुली से रसभरी अमृतमयी दुग्ध-धारा निकली और वह मनुष्य उसका पान करके भूख-प्यास की पीड़ा के साथ ही समस्त पापों और यमयातना से मुक्त हो गया ।

ब्रजशरण

श्रीमाताजी गौशाला,
श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्री मानमंदिर

प्रस्तावित पुनरुद्धार रेखांकित चित्र

'मान मन्दिर' लीलास्थल श्रीराधाकृष्ण की लीला स्थलियों में सबसे प्रमुख है इस अति विलक्षण लीलास्थली के पुनुरुद्धार कार्य में जुड़ कर 'धाम-सेवा' का दुर्लभ लाभ प्राप्त करें

मान मंदिर लीला स्थल श्रीराधाकृष्ण की लीला स्थलियों में सबसे प्रमुख है
इस अति विलक्षण लीला स्थली के पुरुद्धार कार्य में जुड़ कर धाम सेवा का दुर्लभ लाभ प्राप्त करें
सेवा राशि देकर रसीद अवश्य प्राप्त करें।

ACCOUNT NUMBER: 59109927338666
IFSC CODE: HDFC0000268
BANK: HDFC BANK LTD
BRANCH: BSA COLLEGE, MATHURA
संपर्क :9927338666
www.maanmandir.org
आपकी सेवा राशि आयकर अधिनियम 80G/12A के अंतर्गत आयकर छूट के लिए मान्य है
रजिस्ट्रेशन नंबर AADTS716DEF2021401

ACCOUNT NAME
SHRI MAAN BIHARI
LAL MANDIR SEVA
ACCOUNT NUMBER: 59109927338666
IFSC CODE: HDFC0000268
BANK: HDFC BANK LTD
BRANCH: BSA COLLEGE, MATHURA

मान मंदिर लीला स्थल श्रीराधाकृष्ण की लीला स्थलियों में सबसे प्रमुख है
इस अति विलक्षण लीला स्थली के पुरुद्धार कार्य में जुड़ कर धाम सेवा का दुर्लभ लाभ प्राप्त करें

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट, गहवरवन, बरसाना (मथुरा)
www.maanmandir.org; संपर्क :9927338666

QR कोड

पूज्यश्री बाबा
महाराज भक्तों
के साथ
रंगीली होली
उत्सव मनाते
हुए

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित,AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26

भगवान् श्रीरामलला
के जन्म-महोत्सव
की मंगल-बधाई